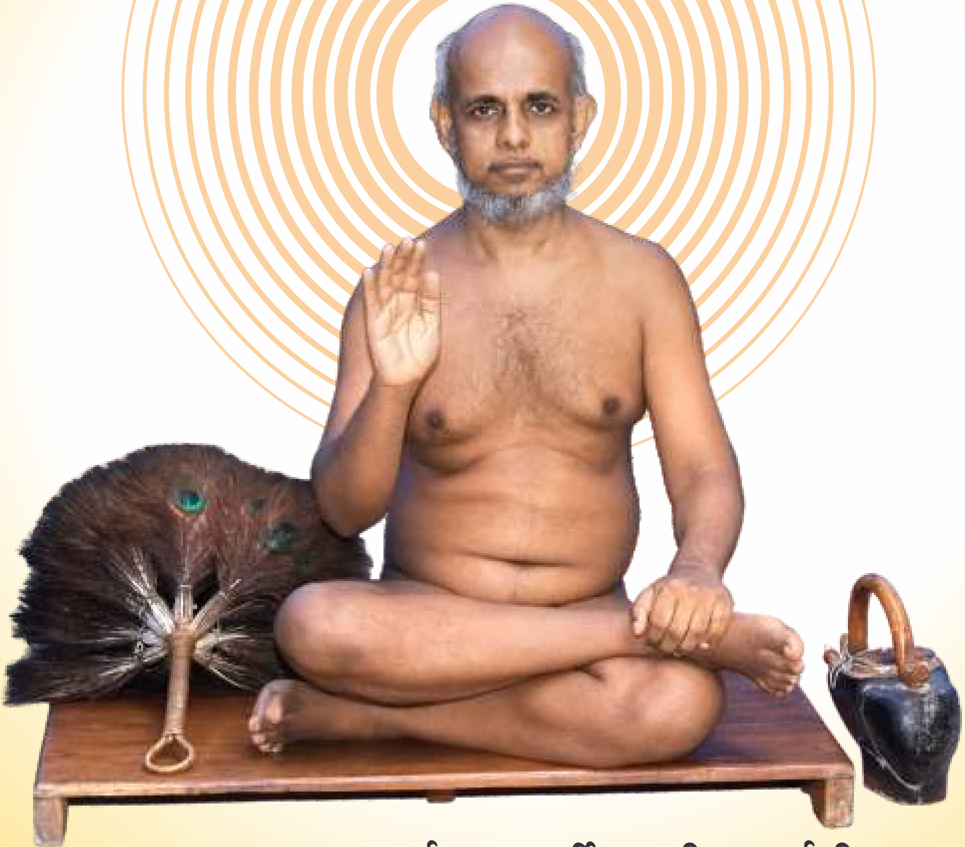

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती पट्टाधीशाचार्यश्री

सुविधिसागर जी महाराज

के

50 वें जन्मदिवस के पावन अवसर पर

सुविधि–परिवार के द्वारा आयोजित

जिनवाणी-महोत्सव

सहस्रग्रन्थसंग्रह

* जन्मदिवस 19–03–1971 * मुनिदीक्षा–11–05–1989 * आचार्यपद– 20–06–2004

पट्टाधीशपद– 24–12–2010 (20–06–2004 को की गई उद्घोषणा के अनुसार)

परम पूज्य आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज के द्वारा की गई उद्घोषणा:–

हमारी समाधि के पश्चात् आपको इस संघ के संचालकपद पर नियुक्त करते हैं।

(अंकलीकर वाणी–जुलाई 2004) (अक्षयज्योति–अक्तूबर 2004)

जैन दर्शन और विज्ञान

लेखक
प्रो. जी. आर. जैन

प्राप्ति स्थान
विजय भवन मेरठ (उत्तरप्रदेश)

(परम्परानायक)

परम पूज्य चारित्र–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री आदिसागर जी महाराज
(अंकलीकर)

(द्वितीय पट्टाधीश)

परम पूज्य तीर्थभक्त–शिरोमणि,
आचार्यश्री महावीरकीर्ति जी महाराज

(तृतीय पट्टाधीश)

परम पूज्य सिद्धान्त–चक्रवर्ती,
आचार्यश्री सन्मतिसागर जी महाराज

(चतुर्थ पट्टाधीश)

परम पूज्य तपश्चर्या–चक्रवर्ती, आचार्यश्री सुविधिसागर जी महाराज

दिगम्बर साधु निरन्तर पगविहार करते रहते हैं। ग्रन्थभण्डार को साथ में रख कर विहार करना अशक्यप्राय: होता है। फलत: उनको ग्रन्थों के सन्दर्भ देखने में असुविधा होती है। उनकी सुविधा के लिये इस कोश का निर्माण किया गया है। इस कोश के निर्माण में किसी भी प्रकार का व्यापारिक हेतु नहीं है।

आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न श्रावकबन्धुओं से निवेदन है कि वे ग्रन्थ का विक्रय कर अध्ययन करने की परम्परा को कायम रखें।

मुखपृष्ठ पर हमने ग्रन्थकर्त्ता, अनुवादक, सम्पादक, प्रकाशक आदि के नाम दिये हैं। किसी संस्थान का कर्तुत्व हमने लुप्त नहीं किया है।

इस कोश के लिये आवश्यक ग्रन्थ हमें अनेक स्रोतों से प्राप्त हुये हैं। हम उन सभी का आभार मानते हैं।

सुविधि–परिवार

ॐ

कालिज विद्यार्थियों के लिये—

जैन दर्शन और विज्ञान

लेखक व प्रकाशक—

प्रोफेसर ओ० आर० जैन

एम० एस-सी०

भूतपूर्व अध्यक्ष, स्नातकोत्तर भौतिक विज्ञान विभाग
विक्टोरिया कालिज एवं माधव इंजीनियरिंग कालिज, ग्वालियर

1880

वीर निर्वाण सम्वत् २४६७ मूल्य एक रुपया ५० पैसे

प्रकाशक व मिलने का पता
प्रो० जी० आर० जैन
विजय भवन
२२३ थापरनगर, मेरठ

मूल्य १ रुपया ५० पैसे

मुद्रक
लोक साहित्य प्रेस,
सुभाष बाजार, मेरठ

दो शब्द

अनेक वर्षों से अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन परिषद के महामन्त्री मेरे परम मित्र भाई उग्रसैन जी जैन का यह अनुरोध चल रहा था कि मैं कालेज के विद्यार्थियों के लिए एक ऐसी पुस्तक जैन दर्शन पर लिखूं जिससे उनका अपने धर्म में श्रृद्धान दृढ़ हो। इस सम्बन्ध में कई बार वे स्वयं आकर मुझसे मिले और अपना अनुरोध दोहराया। इस बीच एक नई बात हुई।

ग्वालियर के भाई कपूरचन्द जी बरैया M. A. साहित्य-रत्न बड़े श्रद्धालु और धर्म प्रेमी व्यक्ति हैं। जब उन्होंने सुना कि मैं ग्वालियर छोड़कर मेरठ जा रहा हूँ तो उन्होंने यह इच्छा प्रकट की कि मैं विज्ञान और जैन धर्म सम्बन्धी जो अपने विचार समय-समय पर प्रकट करता रहा हूं उन्हें लिपि-बद्ध करवा दूं। उनके आग्रह को मैं टाल नही सका। उन्होंने सर्दी की रातों में कई-कई घंटे बैठकर मेरे विचारों को सुना और लिखा। वही संकलन आज आपकी सेवा में प्रस्तुत है। इसके लिये श्री कपूरचन्द जी धन्यवाद और बधाई के पात्र हैं। जैन धर्म में और भी अनेक विषयों का वैज्ञानिक विवेचन मिलता है। यदि सम्भव हुआ तो भविष्य में आपकी सेवा में भेंट करूंगा।

मैं बड़ा आभारी हूंगा यदि पाठक इस पुस्तक के सुधार के लिये अपने उपयोगी सुझाव अथवा रचनात्मक आलोचना भेजने की कृपा करेंगे।

२२३ थापरनगर मेरठ
१ जुलाई १९७१

जी० आर० जैन

मंगलाचरण

नमो नमः सत्व हितंकराय,
वीराय भव्याम्बुज भास्कराय ।
अनन्तलोकाय सुरार्चिताय,
देवाधिदेवाय नमो जिनाय ॥

१. विज्ञान क्या है ?

विज्ञान क्या है ? इस विषय को हम थोड़े शब्दों में प्रकट करें तो कह सकते हैं 'नाप-तौल का नाम विज्ञान (Science) है ।' जिस वस्तु का नाप-तौल नहीं होता वह इसकी परिधि में नहीं हो सकता । उदाहरण के तौर पर हम आत्मा को लें । जैन सिद्धान्त में वर्णित आत्मा एक अरूपी पदार्थ है । जो वस्तु अरूपी होती है उसकी नाप-तौल नहीं हो सकती । यहां अरूपी से मतलब यह नहीं लेना कि जो चीज आँखों से दिखाई न दे वह सब अरूपी है । हवा बहती हुई हमारे शरीर को स्पर्श करती है, भले ही वह हमें दिखाई न दे, किन्तु इससे क्या उसके अस्तित्त्व से इन्कार किया जा सकता है ? हवा को गुब्बारों में भरा जा सकता है जिससे उसके भारीपन का अनुमान सहज ही होता है । लेकिन आत्मा को न पकड़ा जा सकता है, न छुआ जा सकता है और न किसी में बन्द किया जा सकता है, नेत्रों

से देखने का तो प्रश्न ही नहीं है। इससे यह बात तय होती है कि अरूपी पदार्थ होने के कारण आत्मा की नाप-तोल नहीं हो सकती और इसीलिये उसका अध्ययन या उसके अस्तित्व को सिद्ध करना विज्ञान के क्षेत्र से बाहर है।

विज्ञान का दूसरा अर्थ होता है 'तर्कपूर्ण ज्ञान।' यदि देखा जाय तो मालूम होगा कि विज्ञान के क्षेत्र में पक्षपात या संकीर्णता नाम की कोई चीज नहीं है। जो बात तर्क-संगत होती है उसको ग्रहण कर लिया जाता है, ठीक उसी तरह जिस तरह 'हरिभद्र सूरि' के निम्न वाक्य से प्रकट होता है—

पक्षपातो न मे वीरे न द्वेषः कपिलादिषु।
युक्तिमद्वचनं यस्य तस्य कार्यः परिग्रहः ॥

विज्ञान की तीसरी परिभाषा इस प्रकार है—

Science is a series of approximations to the truth अर्थात सत्य को खोजने वाला व्यक्ति शनैः शनैः एक-एक सीढ़ी पार करके सत्य को ढूंढने का प्रयास करता है। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि आज का वैज्ञानिक सत्य के निकटतम पहुंचने का प्रयास करता हुआ चलता है और किसी भी स्टेज पर पहुंचकर वह यह दावा नहीं करता कि उसे उस विषय के सम्पूर्ण ज्ञान की प्राप्ति हो गई है।

वास्तव में यदि देखा जाय तो विज्ञान के सिद्धान्त कोई अन्तिम नहीं हैं। वे समय-समय पर बदलते रहते हैं; उनमे स्थायित्व नहीं होता। एक वैज्ञानिक जिस सत्य पर पहुंचता

है उसे वह छिपाता नही है। अपनी खोज को वह सबके सामने प्रकट कर देता है जिससे कहीं कोई त्रुटि हो तो वह निकल जाय। अपनी कमजोरी को वह स्वीकार करने में हिचकता नहीं। पुनः दूसरा वैज्ञानिक उस खोज को अपने अनुभव के आधार पर आगे बढ़ाता है और इस तरह विज्ञान के क्षेत्र में सत्य क्या है, इस बात की कोशिश बराबर होती रहती है। जो कुछ आँख से या यंत्रों के जरिये देखा जाता है उसका समाधान ढूंढा जाता है। यदि सत्य को पाने में पुराने सिद्धान्त बाधक बनते हैं तो उनके स्थान पर अन्य नये सिद्धांतों की प्रतिष्ठा होती है। इसलिये किसी एक सिद्धान्त पर अड़े रहना विज्ञान का काम नहीं किन्तु धर्म के विषय में इससे भिन्न बात है। जैनधर्म में यह दावा किया गया है कि उसका ज्ञान सम्पूर्ण है और कालभेद से अपरिवर्तनीय है। वैज्ञानिक किसी धर्म ग्रन्थ या शास्त्र से जुड़ा नहीं होता। उसकी खोज से यदि किसी धर्म ग्रन्थ में वर्णित किसी सिद्धांत का व्याघात हो तो वह उसकी कतई परवाह नहीं करता। उदाहरणार्थ बाइबिल (Bible) में यह बताया गया है कि यह पृथ्वी ६ हजार वर्ष पुरानी है किन्तु जब वैज्ञानिकों ने किसी शिला या चट्टान को यह कहकर बताया कि वह ५० हजार वर्ष पुरानी है तो यह बात बाइबिल के खिलाफ हो गई। इसीलिये धर्म ग्रन्थ पर विश्वास करने वाले पुराने रूढ़िवादी लोग यदि उस वैज्ञानिक को नाना तरह के त्रास और यातनाऐं देकर सत्पथ से विचलित करना चाहें तो वह सत्य बात को कहने में नहीं चूकता। यही कारण है कि जहाँ

जैनधर्म में एक श्रद्धालु व्यक्ति अपने आर्ष ग्रन्थों पर दृढ़ श्रद्धानी होता है वहां एक वैज्ञानिक सत्य को अपने विश्वास का केन्द्र विन्दु बनाता है। वह शास्त्रों को भी उतना ही मानता है जहां तक वह तर्क की कसौटी पर सही उतरते हैं। आँख मूँदकर वह किसी भी बात को मानने के लिये तैयार नहीं होता। आज के युग में विज्ञान की यह छाप स्पष्ट है। जीवन का प्रत्येक क्षेत्र उससे प्रभावित है। जादू वह है जो सिर पर चढ़कर बोले।

२. पुद्गल

संसार की रचना में दो द्रव्यों का प्रमुख भाग है। पहला जीव (चेतन) या आत्मा और दूसरे को प्रकृति (जड़) या अचेतन कहा जाता है। जैनाचार्यों ने प्रकृति (जड़) को पुद्गल के नाम से पुकारा है और पुद्गल शब्द की व्याख्या उसके नाम के अनुरूप ही उन्होंने की है 'पूरयन्ति गलयन्ति इति पुद्गलाः' अर्थात् पुद्गल उसे कहते हैं जिसमें पूरण और गलन क्रियाओं के द्वारा नयी पर्यायों का प्रादुर्भाव होता है। विज्ञान की भाषा में इसे फ्यूजन व फिशन (Fusion and Fission) या इन्टिग्रेशन व डिसइन्टिग्रेशन (Integration and disintegration) कहते हैं। एटम बम को फिशन बम और हाइड्रोजन बम को फ्यूजन बम इसी कारण कहा गया है। एटम बम में एटम के टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और तब शक्ति उत्पन्न होती है और हाइड्रोजन बम में एटम परस्पर मिलते हैं और तब उसमें शक्ति का प्रादुर्भाव होता है। पूरण और गलन क्रियाओं को पूर्णरूप से समझने के लिये 'एटम' की बनावट पर कुछ प्रकाश डालना पड़ेगा।

जैसा कि 'तत्त्वार्थ सूत्र' के पञ्चम अध्याय-सूत्र नं० ३३ में कहा गया है 'स्निग्धरूक्षत्वाद्बंधः' अर्थात् स्निग्ध और रूक्षत्व गुणों के कारण एटम एक सूत्र में बँधा रहता है। पूज्यपाद स्वामी ने 'सर्वार्थसिद्धि' टीका में एक स्थान पर लिखा है 'स्निग्धरूक्षगुणनिमित्तो विद्युत्' अर्थात् बादलों में स्निग्ध

और रूक्ष गुणों के कारण विद्युत की उत्पत्ति होती है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि स्निग्ध का अर्थ चिकना और रूक्ष का अर्थ खुरदरा नहीं है। ये दोनों शब्द वास्तव में विशेष (technical) अर्थों में प्रयोग किये गये हैं। जिस तरह एक अनपढ़ मोटर ड्राइवर बैटरी के एक तार को ठंडा और दूसरे तार को गरम कहता है (यद्यपि उनमें से कोई तार न ठंडा होता है और न गरम) और जिन्हें विज्ञान की भाषा में पोजिटिव व नगेटिव (Positive and Negative) कहा जाता है, ठीक उसी तरह जैनधर्म में स्निग्ध और रूक्ष शब्दों का प्रयोग किया गया है। डा० बी एन. सील (B. N. Seal) ने अपनी केम्ब्रिज से प्रकाशित पुस्तक पोजिटिव साइन्सिज ऑफ एनशियन्ट हिन्दूज (Positive sciences of Ancient Hindus) में स्पष्ट लिखा है कि जैनाचार्यों को यह बात मालूम थी कि भिन्न-भिन्न वस्तुओं को आपस में रगड़ने से पोजिटिव और नेगेटिव बिजली उत्पन्न की जा सकती है। इन सब बातों के समक्ष, इसमें कोई सन्देह नहीं रह जाता कि स्निग्ध का अर्थ पोजिटिव और रूक्ष का अर्थ नेगेटिव विद्युत है। सर अरनैस्ट रदर फोर्ड (Earnest Rutherford) जिन्हें फादर ऑफ एटम (Father of the Atom) कहा जाता है, अपने प्रयोगों द्वारा असन्दिग्ध रूप से यह सिद्ध कर दिया है कि प्रत्येक एटम में चाहे वह किसी भी वस्तु का क्यों न हो, पोजिटिव और नेगेटिव बिजली के कण भिन्न-भिन्न संख्या में मौजूद हैं। लोहा चाँदी सोना, तांबा आदि सभी द्रव्यों के एटमों में यही रचना पाई जाती है

और कोई अन्तर नहीं है। इन बातों से 'स्निग्धरुक्षात्वाद्बंधः' इस सूत्र की प्रामाणिकता सम्पूर्ण रूप से सिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार दिवाली के दिन बाजार में बिकने वाले भिन्न-भिन्न खांड के खिलौने यथा बन्दर, रानी, हाथी, घोड़ा आदि विविध रूपों में दिखाई देते हैं। यदि मूलतः देखा जाय तो ये वास्तव में एक ही खांड के भिन्न-भिन्न रूप हैं। हाथी के खिलौने को रानी का रूप दिया जा सकता है और घोड़े को बन्दर की शक्ल में बदला जा सकता है। इसी सिद्धान्त के अनुसार वैज्ञानिकों ने यह जानकर कि सोना, चांदी, तांबा, लोहा, पारा सब एक ही शक्कर के भिन्न-भिन्न रूप हैं एक को दूसरे रूप में परिवर्तित करके संसार को चकित कर दिया है। जब स्निग्ध अथवा रूक्ष कणों की संख्या बढ़ानी पड़ती है तो उसे 'पूरण' क्रिया कहते हैं और जब घटानी पड़ती है तब उसे 'गलन' क्रिया कहते हैं। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि आजकल के वैज्ञानिक विश्लेषण के ठीक अनुकूल जैनाचार्यों ने इस विलक्षण 'पुद्गल' शब्द का प्रयोग अपने ग्रन्थों में बहुत वर्षों पहले किया था।

परमाणुवाद

यों तो परमाणुओं की कल्पना आज से २।। हजार वर्ष पूर्व डिमोक्राइटस आदि यूनानी विद्वानों ने भी की थी और भारत में तो एक ऋषि का नाम ही कणाद ऋषि पड़ गया जिन्होंने पदार्थों के अन्दर कणों अथवा परमाणुओं की कल्पना की थी। किन्तु विज्ञान की दुनिया में लगभग १०० वर्ष तक

यह मान्यता बनी रही कि संसार के पदार्थ ९२ मूल तत्वों से बने हैं, जैसे सोना, चांदी, लोहा, तांबा, जस्ता, शीशा, पारा आदि। ये तत्त्व अपरिवर्तनीय माने गये अर्थात् न तो लोहे को सोने में और न शीशे को चांदी आदि में बदला जा सकता है लेकिन सैकड़ों वर्षों तक रसायन शास्त्री इस प्रयत्न में लगे रहे कि वे जैसे भी हो तांबे या लोहे के टुकड़े को सोने में परिवर्तित कर सकें। ये लोग कीमियागर कहलाते थे, किन्तु आज तक इनको अपने कार्य में सफलता न मिल सकी। जब 'रदरफोर्ड' और 'टौमसन' के प्रयोगों ने यह सिद्ध कर दिया कि चाहे लोहा हो या सोना, दोनों ही द्रव्यों के परमाणु एक से ही कणों से मिलकर बने हैं तो कीमिया-गरी का सपना पुनः लोगों की आँखों के सामने आ गया। उदाहरण के लिये पारे के अणु का भार २०० होता है। २०० का अर्थ है हाइड्रोजन के परमाणु से २०० गुना भारी (हाइड्रोजन के परमाणु को इकाई माना गया है) उसको प्रोटोन द्वारा विस्फोट किया गया जिससे वह प्रोटोन पारे में घुल-मिल गया और उसका भार २०१ हो गया। (प्रोटीन का भार १ होता है) तब स्वतः उस नवीन अणु की मूलचूल से एक अल्फा कण निकल भागा जिसका भार ४ है, अतः उतना ही उसका भार कम हो गया और फलस्वरूप वह १९७ भार का अणु बन गया। और सोने के अणु का भार १९७ होता है। इस प्रकार पारे के पुद्गलाणु की पूर्ण गलन प्रक्रिया द्वारा वह (पारा) सोना बन गया।

परमाणुओं में ये अल्फा (Alpha) कण भरे पड़े हैं। हमारे शास्त्रों की परिभाषा में यह कहा जायगा कि पारा और सोना भिन्न-भिन्न पदार्थ नहीं हैं बल्कि पुद्गल द्रव्य की दो भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं अतएव इनका परस्पर परिवर्तन असम्भव बात नहीं है।

आज वैज्ञानिकों ने इस प्रक्रिया को साक्षात् करके दिखा दिया है, यद्यपि व्यापारिक दृष्टि से इस प्रयोग को सफल नहीं कहा जा सकता क्योंकि इस विधि से बनाया गया सोना बहुत महँगा पड़ता है।

यदि पानी की एक नन्ही बूंद को काटकर दो खण्ड कर दिये जायें और उन दो खण्डों को काटकर ४ खण्ड और इसी प्रकार ४ के ८, ८ के १६, १६ के ३२ करते चले जायें तो कुछ समय पश्चात् पानी की एक इतनी नन्ही-सी बूंद रह जायेगी कि जिसके आगे खण्ड करना संभव नहीं होगा। इस अत्यन्त नन्हीं बूंद को पानी का मोलीक्यूल (Molecule) या जैन शास्त्रों की परिभाषा में स्कन्ध कहते हैं। यह आजकल का एक सर्वसिद्ध तथ्य है कि हाइड्रोजन को जलाने से पानी बन जाता है। पूर्ण विश्लेषण से ज्ञात हुआ है कि जल के एक स्कन्ध में दो परमाणु हाइड्रोजन के और एक परमाणु आक्सीजन का होता है।

अभी जिस नन्हीं-से-नन्ही बूंद का वर्णन किया गया है उसको अगर आगे काटने की और चेष्टा की जाती है तो जल का अस्तित्व ही मिट जाता है और हाइड्रोजन व आक्सीजन अलग-अलग हो जाते हैं। दूसरे शब्दों में जल का

स्कन्ध, जल की वे नन्हीं-से-नन्ही बूंद हैं जिसमें जल के सभी गुण विद्यमान रहते हैं और जिसे काटकर और छोटा नहीं किया जा सकता। जल का यह स्कन्ध इतना छोटा होता है कि जर्मन प्रोफेसर एन्ड्रेड (Andrade) ने अपनी एक पुस्तक में लिखा है कि आधी छटांक जल में, जल के स्कंधों की संख्या इतनी अधिक है कि यदि संसार के सभी प्राणी (जिनकी संख्या आज ३ अरब है) बच्चे, बूढ़े और जवान सभी मिलकर उन्हें बड़ी तेजी से गिनना प्रारम्भ करदें (एक सेकिण्ड में ५) और बिना रुके रात-दिन गिनते ही चले जायें तो उनको गिनने में ४० लाख वर्ष लगेंगे।

जैसा कि कहा गया है जल के स्कन्ध में ३ परमाणु होते हैं—दो हाइड्रोजन के और एक आक्सीजन का। इसी प्रकार अन्य पदार्थों के स्कन्धों में भी परमाणु की भिन्न-भिन्न संख्या पाई जाती है, यहाँ तक कि किसी स्कन्ध में परमाणुओं की संख्या सौ या इससे भी अधिक हो सकती है। जैनागम में परमाणुओं के समूह का नाम स्कन्ध है।

परमाणु-रचना

'गोम्मटसार' जीवकाण्ड में परमाणु को षटकोणी, खोखला और सदा दौड़ता भागता हुआ बतलाया गया है। जैसा अभी कह आये हैं इसकी रचना स्निग्ध और रूक्ष कणों के संयोग से होती है। हाइड्रोजन का परमाणु सबसे हलका और छोटा है। इसके मध्य में धन विद्युत कण (Proton) बहुत थोड़े से स्थान में सिकुड़ा हुआ स्थिर रहता है। परमाणु

का लगभग सम्पूर्ण भार इसी में केन्द्रित रहता है और सभी परमाणुओं में इस मध्य भाग को परमाणु का न्यूक्लियस (Nucleus) या नाभि कहते हैं। न्यूक्लियस के चारों ओर उससे कुछ दूरी पर ऋण विद्युत कण (Electron) लगभग १३०० मील प्रति सेकण्ड की गति से न्यूक्लियस के चक्कर लगाता रहता है। मान लीजिये कि न्यूक्लियस का व्यास एक मिलीमीटर है तो उससे १०० मीटर की दूरी पर याने एक लाख गुना दूरी पर ये इलेक्ट्रोन प्रोट्रोन के चक्कर लगा रहा है (देखो चित्र नं० १) और दोनों के बीच की जगह खाली पड़ी है अर्थात् एटम के अन्दर एक बहुत बड़ी पोल विद्यमान

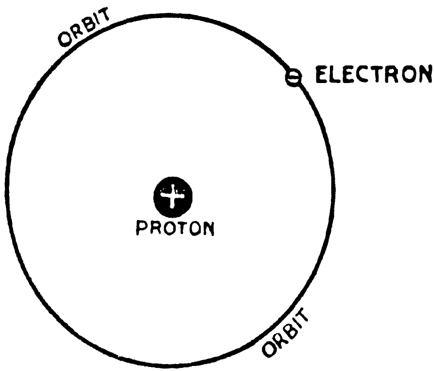

चित्र नं० १

हाइड्रोजन का परमाणु—

केन्द्र का मध्य बिन्दु जिसमें + चिन्ह बना हुआ है परमाणु की नाभि है और उसके चारों ओर जो नन्हा सा वृत्त जिसमें (—) चिन्ह बना हुआ है वह इलैक्ट्रोन है जो नाभि के चारों ओर तीव्र गति से चक्कर काटता रहता है।

है। परमाणु इतना छोटा होता है कि यदि हाइड्रोजन के २५ करोड़ परमाणु एक से दूसरे को सटाकर एक सीधी रेखा में रख दिये जायें तो उस रेखा की लम्बाई केवल एक इञ्च होगी। इसी तरह ४० हजार शंख (२१ अंक प्रमाण) हाइड्रोजन के परमाणु का तौल केवल एक खसखस के दाने के बराबर होता है।

एक परमाणु आकाश के जितने स्थान को घेरता है उसको जैनाचार्यों ने 'प्रदेश' कहा है। किन्तु इसके साथ-साथ यह भी कह दिया है कि विशेष परिस्थितियों में एक प्रदेश के अन्दर अनन्त परमाणु भी समा सकते हैं। इससे प्रगट होता है कि जैनाचार्यों को अणु के खोखलेपन (Atom beeing hollow) का ज्ञान था क्योंकि उसके खोखला होने की अवस्था में ही एक परमाणु के अन्दर दूसरा परमाणु प्रवेश कर सकता है।

'सर्वार्थसिद्धि' की टीका में इसी बात को सूक्ष्म अवगाहन शक्ति का नाम दिया है। जब एक ही प्रदेश में बहुत से परमाणुओं का समावेश हो जाता है तो परमाणुओं के न्यूक्लियस एक ही स्थान पर केन्द्रित हो जाते हैं। जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं परमाणुओं का सारा भार न्यूक्लियस में ही केन्द्रित रहता है, तो तथोक्त न्यूक्लियाई (Nuclei) के केन्द्रीकरण के कारण एक अत्यन्त भारी और ठोस पदार्थ की उत्पत्ति होती है, जिसे साइन्स की भाषा में न्यूक्लियर मैटर (Nuclear Matter) कहते हैं और बोल-चाल की भाषा में वज्र कह सकते हैं। पानी से चांदी लगभग

दस गुना भारी होती है और सोना बीस गुना, किन्तु यह वज्र पानी से ५० हजार गुना भारी होता है। ऐसे वज्र का एक घनइञ्च टुकड़ा—जिसकी लम्बाई चौड़ाई ऊँचाई प्रत्येक एक-एक इञ्च हो, आसानी से बास्कट की जेब में रखा जा सकता है; किन्तु यह ध्यान रहे उस टुकड़े का वजन ५० टन अर्थात् १४०० मन होगा। किसी-किसी तारे में यह पुद्गल इतना भारी है कि एक घन इञ्च का भार ६२० टन हो जाता है। जैन मान्यतानुसार इतना भारी पुद्गल संघति तभी बनता है जब अनन्तानन्त परमाणु एक प्रदेश में इकट्ठे तिष्ठते हैं।

जिस नारायण शिला का जैन शास्त्रों में उल्लेख पाया जाता है और जिसको नारायण पद्वीधारी शलाका पुरुष अपनी कनिष्ठका उँगली पर उठाकर अपने बल का परिचय देते हैं, वह किसी ऐसे ही पदार्थ की बनी हुई मालूम पड़ती है।

न्यूक्लियस के चारों तरफ इलेक्ट्रोन (Electron) की परिक्रमा को एक रूपक में प्रगट किया जा सकता है। जिस प्रकार सौर मण्डल में अनेक ग्रह अपनी निश्चित परिधियों में निरन्तर परिक्रमा किया करते हैं; ठीक उसी प्रकार की क्रिया सूक्ष्म रूप में एटम के अन्दर हुआ करती है। कृष्ण और गोपियों की रासलीला में जिस प्रकार गोपियाँ कृष्ण के चारों ओर नाचती रहती थीं, उसी प्रकार का नाच प्रत्येक एटम के अन्दर हो रहा है। हाइड्रोजन के एटम के अन्दर एक कृष्ण है और उसके चारों ओर केवल एक गोपी परिक्रमा

कर रही है (देखो चित्र न० १) हीलियम गैस के एटम में केन्द्र में दो कृष्ण हैं और उसके चारों ओर दो गोपियाँ नाच रही हैं, इसी प्रकार लीथियम के परमाणु में तीन कृष्ण, तीन गोपियां और बैरीलियम नामक धातु के परमाणु में चार कृष्ण चार गोपियां हैं। हर तत्त्व के एटम में उसके भारीपन के अनुपात से कृष्ण और गोपियों की संख्या बढ़ती चली गई है।

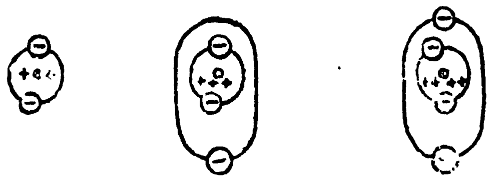

चित्र नं० २

इस चित्र में हिलियम लिथियम और बैरीलियम नामक तत्वों के परमाणु दिखाये गये हैं। इनमें केवल यही अन्तर है कि कृष्ण और गोपियों की संख्या निरन्तर बढ़ती हुई दिखाई गई है।

(देखो चित्र न० २) मुख्य बात जानने की यह है कि एटम चाहे किसी भी तत्त्व का क्यों न हो, उसके अन्दर केवल कृष्ण और गोपियों का नाच हो रहा है। साथ में मनसुखा का भी योग है। इस मनसुखा को 'न्यूट्रोन' कहा गया है।

रेडियो सक्रियता

रेडियो सक्रियता (Radio Activity) भ्रम उत्पन्न करने वाला शब्द है। इस क्रिया का घर-घर में विद्यमान रेडियो से दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। इसका सही नाम रेडियो सक्रियता (Radiation Activity) होना चाहिये

था। जिस समय एटम बम का विस्फोट होता है और यूरेनियम के एटम का विखंडन होता है तो उसमें से न्यूट्रोन निकलते हैं जो यूरेनियम के समीपवर्ती अन्य एटमों का विखंडन करते हैं। यह क्रिया ठीक उसी प्रकार होती है जिस तरह जलते हुए एक कोयले में से निकली हुई चिनगारी पास के कोयले को जला देती है और इस प्रकार थोड़ी देर में सारे कोयले सुलग उठते हैं। विखंडन के समय न्यूट्रोन रूपी चिनगारियाँ तो निकलती ही हैं, उसके साथ-साथ वायुमण्डल में गामा किरणों का विकरण (Radiation) भी होता है। गामा किरणों के इस विकरण को रेडियो सक्रियता (Radio Activity) कहते हैं। ये गामा किरणें क्षय किरणों (X-Rays) से हजार गुना छोटी होती हैं और इस कारण ये न केवल मांस के पार हो जाती हैं बल्कि पैने तीर की तरह हड्डियों के भी पार हो जाती हैं। फलतः हड्डियों के अन्दर की चरबी और रक्त के लाल कण नष्ट हो जाते हैं, शरीर का रक्त नीला पड़ जाता है और मनुष्य धीरे-धीरे वर्षों तक मरता रहता है। इस रोग का अभी तक कोई इलाज वैज्ञानिक नहीं निकाल सके हैं।

यूरेनियम, थोरियम, रेडियम आदि नाम की जो धातुएँ हैं, इनमें रेडियो सक्रियता प्रत्येक समय विद्यमान रहती है। यूरेनियम की एक डली में अल्फा बीटा गामा किरणें अबाध गति से निरन्तर निकलती रहती हैं और लगभग २ अरब वर्षों में यूरेनियम की आधी डली रेडियम में परिवर्तित हो जाती है। ये ही प्रतिक्रिया रेडियम में भी रात-दिन हुआ

करती है। रेडियम की एक डली का आधा भाग लगभग ६ हजार वर्षों में शीशे में परिवर्तित हो जाता है। (देखो चित्र न० ३) इस प्रक्रिया का अध्ययन सर्वप्रथम १८६४ में एक वैज्ञानिक बैकरल (Becquerel) ने किया। पुद्गल की

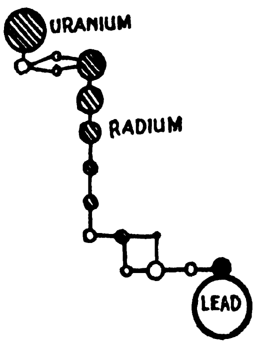

चित्र नं० ३

इस चित्र में दिखाया गया है कि यूरेनियम नामक धातु में कुछ वर्षों तक विकिरण होने के पश्चात वह रेडियम में परिवर्तित हो जाती है और फिर रेडियम शीशे में परिवर्तित हो जाता है। चित्र से यह भी विदित होता है कि यूरेनियम-रेडियम में परिवर्तित होने के पश्चात उसकी मात्रा कम हो जाती है और इसी प्रकार रेडियम के शीशे में बदलने पर होता है। इसका कारण यह है कि यूरेनियम अथवा रेडियम में से जो किरणें अबाध गति से निकलती रहती हैं वह भी पुदगल का स्वरूप है।

दृष्टि से यह एक विलक्षण बात है। यूरेनियम, रेडियम और शीशा ये तीनों तत्त्व एक दूसरे से बिलकुल भिन्न तत्त्व हैं। रेडियम की कीमत लाखों रुपये तोला है और शीशे की कीमत ५—६ रुपये सेर है। प्रकृति बतला रही है कि संसार में जितने द्रव्य हैं, ये पुद्गल की भिन्न-भिन्न पर्यायें हैं और कुछ पर्यायें ऐसी हैं जो स्वयं बिना प्रयास ही एक से दूसरे रूप में बदल रही हैं। पुद्गल शब्द की उपयोगिता और यथार्थता का इससे बड़ा प्रमाण और क्या हो सकता है, जो जैन तीर्थंकरों ने अपनी दिव्य वाणी द्वारा हमको बतलाया है।

वैज्ञानिकों ने इसी प्रक्रिया को कृत्रिम रूप से उत्पन्न किया है जिसे कृत्रिम रेडियो सक्रियता (Artificial Radio Activity) कहते हैं। इस क्रिया में अतिशीघ्रगामी न्यूट्रौन कणों को गोली के रूप में प्रयोग किया गया है। इन गोलियों से जब किसी परमाणु पर प्रहार किया जाता है तब उस परमाणु का हृदय विदीर्ण हो जाता है। परमाणु का

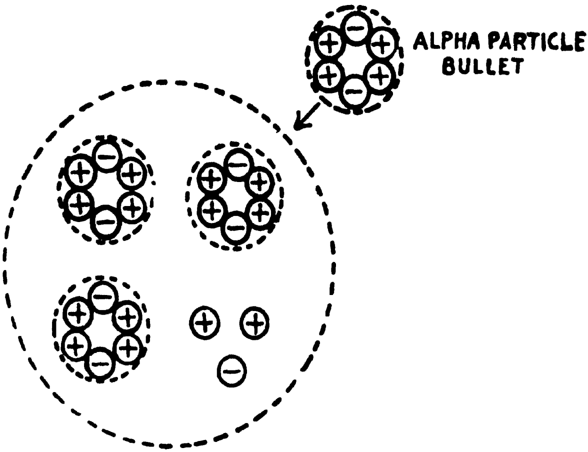

चित्र नं० ४

नाइट्रोजन का न्यूक्लियस विस्फोट से पहले

रूपान्तर हो जाता है और उसमें से गामा किरणें निकलती हैं। इस प्रकार से वैज्ञानिकों ने नाइट्रोजन को आक्सीजन में, सोडियम को मैग्नेशियम में, मैग्नेशियम को एल्यूमीनियम में, एल्यूमीनियम को सिलीकौन में, सिलीकौन को फासफोरस में, बेरीलियम को कार्बन में बदलकर दिखा दिया है। (देखो

चित्र ४ और ५ में यह दिखलाया गया है कि नाइट्रोजन के परमाणु को किस प्रकार आक्सीजन के परमाणु में परिवर्तित किया गया है। चित्र ४ में जो बड़ा वृत बना हुआ है वह नाइट्रोजन के परमाणु का नाभि (Nucleus) है इसके अन्दर जो तीन छोटे वृत बनाये गये हैं वे तीन एल्फा कण हैं। प्रत्येक एल्फा कण के अन्दर ४ प्रोटौन और २ इलेक्ट्रोन होते हैं। प्रोटौन को (+) धन चिन्ह से अंकित किया गया है और इलेक्ट्रौन को ऋण (—) चिन्ह से। चित्र ४ को देखने से ज्ञात होगा कि नाइट्रोजन के परमाणु में विस्फोट होने से पहले उसकी नाभि में तीन एल्फा कण दो प्रोटौन और एक इलेक्ट्रोन होता है। इसी चित्र में दाहिनी ओर जो एल्फा कण दिखलाया गया है वह एक गोली है जो नाइट्रोजन के परमाणु में विस्फोट उत्पन्न करने के लिए प्रयोग में लाई जा रही है।

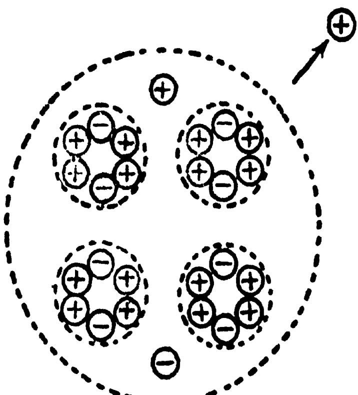

चित्र नं० ५

नाईट्रोजन का न्यूक्लियस विस्फोट के बाद आक्सीजन में परिवर्तित हो गया

चित्र ५ में नाईट्रोजन के परमाणु की विस्फोट के पश्चात् जो अवस्था होती है वह दिखलाई गई है। चित्र को देखने से ज्ञात होगा कि बाहर से भेजा हुआ एल्फा कण नाभि के अन्दर घुसकर बैठ गया है और उसकी टक्कर से एक प्रोटौन बाहर निकल पड़ा है वह नया परमाणु बना जो आक्सीजन का परमाणु है। पुदगल में होने वाली पूरयन्ति क्रिया का यह बड़ा सुन्दर उदाहरण है।

चित्र नं० ४ व ५) दूसरे शब्दों में पुद्गल शब्द को सभी दिशाओं में पूर्ण विजय प्राप्त हुई है। (देखो चित्र नं० ६, ७ व ८)

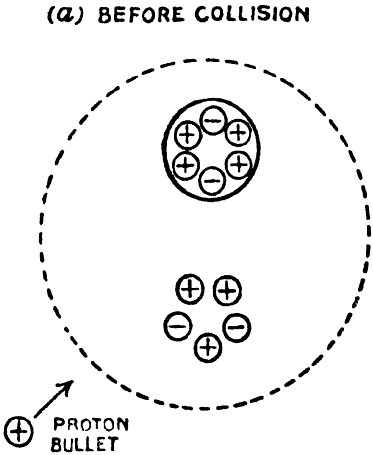

चित्र नं० ६

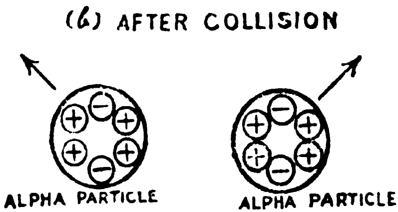

चित्र नं ७

चित्र नं० ६ और ७ में पुद्गल का गलयन्ति स्वभाव दर्शाया गया है। चित्र ६ में लीथियम धातु का परमाणु दिखलाया गया है। इसकी नाभि में एक एल्फा कण और तीन प्रोटोन, और दो इलेक्ट्रोन पाये जाते हैं। बांये हाथ का तीर (→) द्वारा यह दिखलाया गया है कि एक प्रोटोन उस परमाणु की नाभि में बड़े वेग से प्रहार करने जा रहा है। प्रहार के पश्चात जो अवस्था होती है वह चित्र ७ में दिखलाई गई है। इस चित्र को देखने से ज्ञात होगा कि यह प्रोटोन अन्दर घुस कर एक एल्फा कण बनाता है और विस्फोट की क्रिया में दोनों एल्फा कण पृथक पृथक हो जाते हैं। इस प्रक्रिया में पूरयन्ति और गलयन्ति दोनों क्रियायें साथ-साथ हो रही हैं।

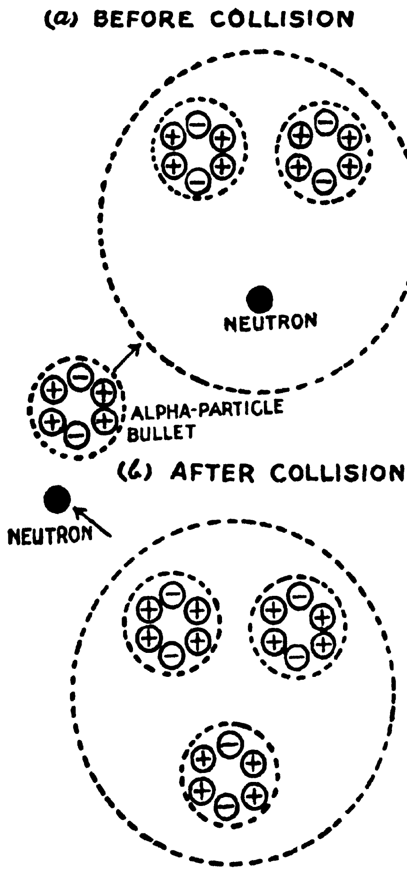

चित्र नं० ८ (a और b)

इन चित्रों में वह क्रिया दिखलाई गयी है जिसके द्वारा बेरीलियम धातु का परमाणु कार्बन के परमाणु में परिवर्तित हो जाता है। ये

दोनों पदार्थ एक दूसरे से बिलकुल भिन्न हैं चित्र ८ (a) को देखने से ज्ञात होगा कि बैरीलियम के परमाणु में दो एल्फा कण और एक न्यूट्रौन (मनसुखा) है। बाहर से भेजा हुआ एक एल्फा कण जब बैरीलियम के परमाणु को बेधता हुआ उसके हृदय में जा बसता है तो बेचारा मनसुखा (न्यूट्रौन) बाहर धकेल दिया जाता है और जो नया परमाणु बनता है वह कार्बन का परमाणु है। यहां भी पुदगल की दोनों क्रियाओं में पूरयन्ति और गलयन्ति प्रदर्शित हो रही हैं।

ऊर्जा (Energy) और पदार्थ (Matter) में समानता

जैन तीर्थकरों ने आताप (heat), उद्योत (light), विद्युत (Electricity) इन शक्तियों को पुद्गल का अति सूक्ष्म स्वरूप बतलाया है, किन्तु विज्ञान के क्षेत्र में यह मान्यता केवल ५० या ५५ वर्ष पुरानी है। जर्मनी के प्रो० अलबर्ट आइन्सटाइन ने सबसे पहले एक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया जिसे पदार्थ व ऊर्जा का समानता सिद्धान्त (Principle of Equivalance between mass and energy) कहते हैं। सूत्र रूप से इसे $E=mc^2$ कहा गया है। E का अर्थ है एनर्जी, m का अर्थ है मास (पदार्थ) और c प्रकाश की गति का द्योनक है। बोलचाल की भाषा में इसे यूं प्रकट कर सकते हैं '३००० टन पत्थर के कोयले को जलाने से जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उतनी ही शक्ति एक ग्राम पदार्थ में से प्राप्त हो सकती है जब वह पदार्थ अपने स्थूल रूप को नष्ट करके शक्ति के सूक्ष्म रूप में परिणत हो जाता है, जो बात सैंकड़ों वर्षों से जैन शास्त्रों में छिपी पड़ी थी उसी को आइन्सटाइन ने एक गणित के सूत्र रूप में दुनिया के सामने रक्खा।

इस सिद्धान्त को एक और दिशा में लगाया गया है। हम जानते हैं कि कोई पदार्थ चाहे वह कितना ही गर्म क्यों न हो, रखा-रखा कालान्तर में ठण्डा हो जाता है। किन्तु सूर्य जो अविरल रूप से समस्त ब्रह्माण्ड को अपनी शक्ति दे रहा है, समय के साथ साथ ठण्डा होना चाहिये था वह नहीं हो रहा है। यह एक विलक्षण बात है। मार्तण्ड-प्रभा के इस स्रोत को ढूंढ़ने का प्रयास पिछले ३०० वर्षों से बराबर होता आ रहा है। इस सम्बन्ध में समय-समय पर अनेक अटकलें लगाई गईं किन्तु सम्पूर्ण समाधान किसी भी तरह सम्भव न हो सका।

जब आइन्सटाइन का सिद्धान्त दुनिया के सामने आया तो अमेरिका के प्रो० बीथे (Bethe) ने इस समस्या को सदा के लिये हल कर दिया। उन्होंने बतलाया कि सूर्य के अन्दर हजारों हाइड्रोजन बम प्रतिक्षण छूटते रहते हैं जिसके कारण सूर्य का तापमान एक-सा बना रहता है और वह ठण्डा नहीं होता।

सूर्य जो ८००० मील व्यासवाली हमारी पृथ्वी से १० लाख गुना बड़ा है उसमें अधिकांश मात्रा हाइड्रोजन गैस की है। हाइड्रोजन परमाणु का वजन १.००८ है। हाइड्रोजन के ४ परमाणु मिलते हैं तब हीलियम गैस का एक परमाणु बनता है। हीलियम गैस के परमाणु का वजन ४ है किन्तु हाइड्रोजन के ४ परमाणु का वजन १.००८ × ४ अर्थात् ४.०३२ हुआ। अब प्रश्न यह सामने आता है कि जब हाइड्रोजन

के ४ परमाणु मिलकर हीलियम का एक परमाणु बनाते हैं तो ०.०३२ वजन का क्या हुआ ? यह वजन कहां चला गया ?

प्रो० बीथे ने उसका उत्तर यह कहकर दिया कि ०.०३२ वजन शक्ति के रूप में परिवर्तित हो गया और इसी शक्ति के सहारे सूर्य अपने ताप को कायम रखे हुए है अर्थात् वह ठण्डा नहीं होता।

हम ऊपर कह आये हैं कि एक ग्राम पदार्थ ३००० टन कोयले की शक्ति के बराबर होता है तो ०.०३२ ग्राम वजन लगभग १०० टन कोयले के बराबर हुआ, क्योंकि ०.०३२ को ३००० से गुणा करने पर गुणनफल ९६ आता है। अर्थात् बीथे के सिद्धान्तानुसार जब-जब हाइड्रोजन के ४ परमाणु मिलकर हीलियम का एक परमाणु बनाते हैं तो लगभग १०० टन कोयले को जलाने से जितनी शक्ति उत्पन्न होती है उतनी ही शक्ति इस प्रक्रिया द्वारा प्राप्त होती है। सूर्य के गर्भ मे ऐसी क्रिया लाखों स्थानों पर एक साथ होती रहती है। यही हाइड्रोजन बम का सिद्धान्त है और इसलिये हम कह सकते हैं कि प्रतिक्षण सौ-सौ टन वाले हजारों हाइड्रोजन बम सूर्य के अन्दर लगातार छूटते रहते हैं और उनसे जो शक्ति प्राप्त होती है वह सकल ब्रह्माण्ड में फैलती रहती है। इस तरह सूर्य का तापक्रम एक-सा बना रहता है। परिणाम यह होता है कि प्रत्येक हाइड्रोजन बम छूटने के समय सूर्य का वजन किञ्चित (०.०३२) घट जाता है।

जितनी शक्ति सूर्य में से निकलती है उसके कारण सूर्य का वजन ८६ हजार टन प्रत्येक मिनट में कम होता

जा रहा है। याद रहे सूर्य का सम्पूर्ण वजन $१०^{२२}$ (टैन टू दि पावर ट्वन्टी टू) याने लगभग २० हजार शंख टन है।

तीर्थंकरों की बताई हुई पुद्गल की व्याख्या का यह कितना सुन्दर समाधान है।

जैन अणु सिद्धान्त की उपर्युक्त मान्यतायें नितान्त अनूठी और विज्ञानसिद्ध हैं। ऐसी ही और भी बहुत बातें हैं जो तीर्थंकरों के अनन्तज्ञान का बोध कराती हैं। पाठक इतने से ही संतोष करें।

३. धर्मास्तिकाय

जेन मान्यता के अनुमार यह लोक छः द्रव्यों का ममुदाय है, अर्थात् यह ब्रह्माण्ड छ पदार्थों से बना है। जीव (Soul), अजीव (Matter and Energy), धर्म (Medium of motion) और वह माध्यम जिसमें होकर प्रकाश की लहरें एक स्थान से दूमरे स्थान नक पहुंचती हैं (Luminiferous Aether of the scientist) अधर्म, (Medium of Rest) याने फील्ड ऑफ फोम (Field of force) आकाश (Pure space) और काल (Time)। जैन ग्रन्थों में जहां-जहां धर्म द्रव्य का उल्लेख आया है वहां धर्म शब्द का एक विशेष पारिभाषिक अर्थ में प्रयोग किया गया है। यहां 'धर्म' का अर्थ न तो कर्तव्य (duty) है और न उमका अभिप्राय सत्य, अहिमा आदि मत्कार्यों से है। 'धर्म' शब्द का अर्थ है एक अदृश्य, अरूपी (Non-material) माध्यम, जिममें होकर जीवादि भिन्न-भिन्न प्रकार के पदार्थ एवं ऊर्जा गति करते हैं। यदि हमारे और तारे मितारों के बीच में यह माध्यम नहीं होता तो वहां से आने वाला प्रकाश, जो लहरों के रूप में धर्म द्रव्य के माध्यम से हम तक पहुंचता है, वह नहीं आ मकता था और ये मब तारे मितारे अदृश्य हो जाते।

यह माध्यम विश्व के कोने-कोने में और परमाणु के भीतर भरा पड़ा है। यदि यह द्रव्य नहीं होता तो ब्रह्माण्ड में कहीं भी गति नजर नहीं आती। यह एक मर्वमान्य मिद्धांत

है कि किसी भी वस्तु के स्थायित्व के लिये उसकी शक्ति अविचल रहनी चाहिये। यदि उसकी शक्ति शनै-शनै नष्ट होती जाय या बिखरती जाय तो कालान्तर मे उस वस्तु का अस्तित्व ही समाप्त हो जायगा। इस ब्रह्माण्ड को, कुछ लोग तो ऐसा मानते हैं कि इसका निर्माण आज से कुछ अरब वर्ष पहले किसी निश्चित तिथि पर हुआ। दूसरी मान्यता यह है कि यह ब्रह्माण्ड अनादि काल से ऐसा ही चला आ रहा है और ऐसा ही चलता रहेगा। आइन्सटाइन की विश्व सबधी बेलन सिद्धान्त (Cylinder theory of the Universe) मे इसी प्रकार की मान्यता है। इस सिद्धान्त के अनुसार यह ब्रह्माण्ड तीन दिशाओ (लम्बाई चौडाई और ऊँचाई) मे सिलिडर की तरह से सीमित है किन्तु समय (time) की दिशा में अनन्त है। दूसरे शब्दो मे हमारा ब्रह्माण्ड अनन्त काल से एक सीमित पिण्ड की भाति विद्यमान है।

वैसे तो अगर हम यह सोचने लगे कि ये आसमान कितना ऊँचा होगा तो उसकी सीमा की कोई कल्पना नही की जा सकती। हमारा मन कभी यह मानने को तैयार नही होगा कि कोई ऐसा स्थानभी है जिसके आगे आकाश नही है। जैन शास्त्रो मे भी विश्व को अनादि अनन्त बताया है और उसके दो विभाग कर दिये हैं—एक का नाम 'लोक' रखा है, जिसमे सूर्य, चन्द्रमा, तारे आदि सभी पदार्थ गर्भित हैं और इसका आयतन ३४३ घनरज्जु है। आइन्सटाइन ने भी लोक का आयतन घनमीलों मे दिया है। एक मील लम्बा, एक मील चौड़ा और एक मील ऊँचे आकाश खण्ड को एक

घनमील कहते हैं। इसी प्रकार एक रज्जु लम्बी एक रज्जु चौड़ी और एक रज्जु ऊँचे आकाश खण्ड को एक घनरज्जु कहते हैं। आइन्सटाइन ने ब्रह्माण्ड का आयतन १०३७×१०^{६३} घनमील बतलाया है। इसको ३४३ के साथ समीकरण करने पर एक रज्जु १५ हजार शंख मील के बराबर बैठता है। ब्रह्माण्ड के दूसरे भाग को 'अलोक' कहा गया है। लोक से परे सीमा के बंधनों से रहित यह अलोकाकाश लोक को चारों ओर से घेरे हुए है। यहां आकाश के सिवाय जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म और काल किसी द्रव्य का अस्तित्व नहीं है।

लोक और अलोक के बीच की सीमा को निर्धारण करने वाला धर्म द्रव्य अर्थात् 'ईथर' है। चूंकि लोक की सीमा से परे ईथर का अभाव है इस कारण लोक में विद्यमान कोई भी जीव या पदार्थ अपने सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप में अर्थात् एनर्जी के रूप में भी लोक की सीमा से बाहर नहीं जा सकता। इसका अनिवार्य परिणाम यह होता है कि विश्व के समस्त पदार्थ और उसकी सम्पूर्ण शक्ति लोक के बाहर नहीं बिखर सकती और लोक अनादि काल तक स्थायी बना रहता है। यदि विश्व की शक्ति शनैः २ अनन्त आकाश में फैल जाती तो एक दिन इस लोक का अस्तित्व ही मिट जाता। इसी स्थायित्व को कायम रखने के लिये आइन्सटाइन ने कर्वेचर आफ स्पेस (Curvature of space) की कल्पना की। इस मान्यता के अनुसार आकाश के जिस भाग में जितना अधिक पुद्गल द्रव्य विद्यमान रहता है उस स्थान पर आकाश उतना ही

अधिक गोल हो जाना है। इस कारण ब्रह्माण्ड की सीमायें ग ल हैं। शक्ति जब ब्रह्माण्ड की गोल सीमाओं से टकराती है तब उसका परावर्तन हो जाता है और वह ब्रह्माण्ड से बाहर नहीं निकल पाती। इस प्रकार ब्रह्माण्ड की शक्ति अक्षुण्ण बनी रहती है और इस तरह वह अनन्त काल तक चलती रहती है।

पुद्गल की विद्यमानता से आकाश का गोल हो जाना एक ऐसे लोहे की गोली है जिसे निगलना आसान नहीं। आइन्सटाइन ने इस ब्रह्माण्ड को अनन्त काल तक स्थाई रूप देने के लिये ऐसी अनूठी कल्पना की। दूसरी ओर जैनाचार्यों ने इस मसले को यूं कहकर हल कर दिया कि जिस माध्यम में होकर वस्तुओं, जीवों और शक्ति का गमन होता है, लोक से परे वह है ही नही। यह बड़ी युक्तिसंगत और बुद्धिगम्य बात है। जिस प्रकार जल के अभाव में कोई मछली तालाब की सीमा से बाहर नही जा सकती, उसी प्रकार लोक से अलोक में शक्ति का गमन ईथर के अभाव के कारण नही हो सकता। जैन शास्त्रों का धर्म द्रव्य मैटर या एनर्जी नही है, किन्तु साइन्स वाले ईथर को एक सूक्ष्म पौद्गलिक माध्यम मानते आ रहे हैं और अनेकानेक प्रयोगों द्वारा उसके पौद्गलिक अस्तित्व को सिद्ध करने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु वे आज तक इस दिशा में सफल नही हो पाये हैं। हमारी दृष्टि से इसका एक मात्र कारण यह है कि ईथर अरूपी पदार्थ है। कहीं तो वैज्ञानिकों ने ईथर को हवा से भी पतला माना है और कही स्टील से भी अधिक

मजबूत। ऐसे परस्पर विरोधी गुण वज्ञानिकों के ईथर में पाये जाते हैं और चूंकि प्रयोगों द्वारा वे उसके अस्तित्व को सिद्ध नहीं कर सके हैं इसलिये आवश्यकतानुसार वे कभी उसके अस्तित्व को स्वीकार कर लेते हैं और कभी इन्कार। वास्तविकता यही है जो जैनागम में बतलाई गई है कि ईथर एक अरूपी द्रव्य है जो ब्रह्माण्ड के प्रत्येक कण में समाया हुआ है और जिसमें से होकर जीव और पुद्गल का गमन होता है। यह ईथर द्रव्य प्रेरणात्मक नहीं है, याने किसी जीव या पुद्गल को चलने की प्रेरणा नहीं करता वरन् स्वयं चलने वाले जीव या पुद्गल की गति में सहायक हो जाता है, जैसे ऐञ्जिन के चलने में रेल की पटरी (लाइनें) सहायक हैं। इस द्रव्य के बिना किसी द्रव्य की गति सम्भव नहीं है।

४. अधर्मास्तिकाय

अधर्म द्रव्य (Medium of Rest or Field of force) यह भी एक निष्क्रिय अरूपी पदार्थ है जो समस्त विश्व के कण कण में व्याप्त है। यह दृश्यमान जगत का मूल कारण है। यदि यह द्रव्य नहीं होता तो अखिल ब्रह्माण्ड, उस रूप में नहीं होता जिस रूपमें वह आज दिखाई देता है। इसी माध्यम में होकर आधुनिक विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण व विद्युत-चुम्बकीय शक्तियां (forces of Gravitation and Electro Magnetism) काम करते हैं। सर आइजक न्यूटन का गुरुत्वाकर्षण का सिद्धान्त जगत विख्यात है जो उसने १७वीं शताब्दि के मध्य में दिया था और जिसका विवरण न्यूटन से ६०० वर्ष पहले भास्कराचार्य ने अपने सूर्य सिद्धान्त में किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार पुद्गल का एक पिण्ड पुद्गल के दूसरे पिण्ड को अपनी ओर आकर्षित करता है और यह आकर्षण परस्पर दूरी के अनुसार बदलता रहता है। दूरी के दूना हो जाने पर आकर्षण बल एक चौथाई रह जाता है। इसी आकर्षण बल के आधार पर सौर-मण्डल के सब ग्रह आकाश में स्थित रहते हैं। पिण्डों की परस्पर दूरी जब बहुत ही कम रह जाती है या बहुत अधिक हो जाती है तो यह आकर्षण अपकर्षण में बदल जाता है।

पुद्गल का प्रत्येक पिण्ड अणुओं का समूह है। प्रत्येक अणु के गर्भ में विद्युत के धन और ऋणकण, जिन्हें

Proton और Electron कहते है, विद्यमान रहते हैं। जो शक्ति Electron को निरन्तर Proton के चारों ओर गतिमान अवस्था में रखती है और एक दूसरे से पृथक नहीं होने देती, वह शक्ति विद्युत चुम्बकीय शक्ति (Force of Electro-Magnetism) कहलाती है और जिस द्रव्य के माध्यम से यह शक्ति काम करती रहती है उसे फील्ड (field) कहते हैं। दूसरे शब्दों मे इस अधर्म द्रव्य के माध्यम से कार्य करने वाली शक्तिया परमाणु के अन्दर इलैक्ट्रोन (Electron) को प्रोटौन (Proton) से पृथक नही होने देतीं और परमाणु का स्वरूप यथावत बना रहता है। इसी प्रकार स्कन्धों के अन्दर परमाणु स्थित रहते हैं। यदि यह द्रव्य स्कन्धो के अन्दर विद्यमान नही होता तो स्कन्ध बिखर पडते। इसी प्रकार क्रिस्टल (Crystal) के अन्दर स्कन्ध अपने-अपने स्थान पर इसी माध्यम के द्वारा बने रहते हैं। अणुओ और स्कन्धों के अन्दर जो फील्ड (Field) रहता है वह साइन्स के शब्दों में विद्युत-चुम्बकीय (Electro Magnetic) कहलाता है और जब पुद्गल का पिण्ड बड़ा होता है तो फील्ड (Field) को गुरुत्वाकर्षण क्षेत्र (Gravitational field) कहते हैं।

आइन्सटाइन ने २२ वर्ष तक निरन्तर कार्य करने के पश्चात् एक नया सिद्धान्त दुनिया के सामने रखा, जिसे गुरुत्वाकर्षण व विद्युत-चुम्बकीय शक्तियों का समन्वित सिद्धात (Unified field theory of Gravitation and Electro-Magnetism) कहते हैं। इस सिद्धान्त में यह बतलाया गया है कि गुरुत्वाकर्षण (Gravitation) और विद्युत-चुम्ब-

कीय शक्ति (Electro Magnetism) की शक्तियां एक ही समीकरण के द्वारा व्यक्त की जा सकती हैं अर्थात् ये दोनों एक ही हैं। इसी समन्वित सिद्धान्त (Unified field) का नाम हमारे धर्म ग्रन्थों में अधर्म द्रव्य कहकर पुकारा गया है और उसका लक्षण यही बतलाया गया है कि यह एक अपौद्-गलिक (Non-material) अरूपी (formless) माध्यम है जो छोटी से छोटी अथवा बड़ी से बड़ी वस्तुओं के एक साथ रहने में सहायक होता है।

पुनः एक बार यह बतलाना आवश्यक है कि षट् द्रव्यों के निरूपण में अधर्म शब्द का अर्थ पाप नहीं है। यह एक पारि-भाषिक शब्द है जिसे विशेष अर्थों में प्रयुक्त किया गया है। ब्रह्माण्ड के छः मूलभूत पदार्थों में से यह एक है और इसका कार्य कौसमिक यूनिटी (Cosmic Unity) बनाये रखना है। इसी अधर्म द्रव्य (field of force) के सहारे ब्रह्माण्ड के भिन्न-भिन्न पिण्ड अपने-अपने स्थानों पर अवस्थित रहते हैं। इसी के सहारे स्कन्धों में परमाणु और परमाणुओं में स्निग्ध और रुक्ष कण व्यवस्था बनाये रखते हैं। अगर यह द्रव्य न होता तो संसार कौसमौस (Cosmos) की जगह कैयास (Chaos) होता अर्थात् समस्त ब्रह्माण्ड में अव्यवस्था फैल जाती।

५. आकाश

कान्ट (Kant) और हीगल (Hegel) आदि पाश्चात्य दार्शनिकों ने आकाश के पृथक् अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। वे उसे मन की कल्पना बताते रहे। किन्तु आकाश के अस्तित्व को अस्वीकार नही किया जा सकता। आकाश वह अमूर्त द्रव्य है जिसमें सभी द्रव्य स्थान पाते हैं। धर्म अधर्म और काल द्रव्य भी आकाश में ही स्थित हैं वे एक दूसरे में व्याप्त हैं अर्थात् परस्पर एक दूसरे में समावेश करने वाले (Inter penetrating) हैं।

जैसा कि पहले बतला चुके हैं जैनाचार्यों ने आकाश के दो विभाग किये हैं, लोकाकाश और अलोकाकाश। लोकाकाश सीमा सहित है और अलोकाकाश सीमा रहित। धर्म द्रव्य अथवा मीडियम ऑफ मोशन (Medium of Motion) नाम का द्रव्य लोक से परे नही पाया जाता, इसलिये लोक के अन्दर से पुद्गल व आत्मायें बाहर नहीं जा सकते और इस अपेक्षा से लोक की एक सीमा बंध जाती है। लोक से परे अनन्त आकाश को अलोकाकाश कहते हैं, जहां आकाश के सिवाय और कोई द्रव्य नहीं पाया जाता। यह मान्यता बिलकुल उचित ही है; क्योंकि ऐसे स्थान की कल्पना नहीं की जा सकती जिसके आगे आकाश न हो। कुछ दार्शनिकों ने आकाश और धर्म द्रव्य को समझने में गलती की है। उन्होंने आकाश को 'ईथर' समझा जो कि ब्रह्माण्ड के कोने-

कोने में भरा पड़ा है। कुछ लोगों का यह भी मत है कि ३ द्रव्यों (धर्म, अधर्म, आकाश) को पृथक् मानने की आवश्यकता न थी, अकेला आकाश ही तीनों द्रव्य का काम करता है। किन्तु जैनाचार्य इससे सहमत नहीं। आकाश का कार्य है केवल वस्तुओं को अवगाहना देना (To accommodate) धर्म द्रव्य का कार्य है एक ऐसा माध्यम प्रदान करना जिसमें पुद्गल और शक्ति (ऊर्जा) एक स्थान से होकर दूसरे स्थान तक जाते हैं। यदि यह माध्यम न होता तो हम कुछ भी देखने में असमर्थ होते। अधर्म द्रव्य वह माध्यम है जिसमें होकर गुरुत्वाकर्षण और विद्युत चुम्बकीय शक्तियां (Gravitational and Electro Magnetic forces) काम करते हैं। इसी माध्यम के कारण स्कन्धों में परमाणु और पदार्थों में स्कन्ध अपने-अपने स्थान पर ठहरे हुये कार्य कर रहे हैं। अतएव अकेला आकाश द्रव्य तीनों कार्य नहीं कर सकता। लोक की मर्यादा धर्म और अधर्म द्रव्य को पृथक् और स्वतन्त्र मानने से ही सम्भव है।

६. काल

संमार के अन्दर जो छः द्रव्य पाये जाते हैं उनमें से काल द्रव्य एक है। उसके दो विभाग हैं—व्यवहार काल और निश्चय काल। व्यवहार काल उसे कहते हैं जिसके कारण सभी जीवधारी और अजीव पदार्थ अपनी अपनी आयु पूरी करते हैं। वह वस्तुओं के परिवर्तन होने में सहायता करता है तथा ममय, घड़ी, घण्टा, दिन-रात आदि के रूप में जाना जाता है। निश्चय काल कालाणुओं की एक लड़ी है। प्रत्येक कड़ी में अन-गिनत कालाणु संलग्न हैं। एक-एक कालाणु लोक के एक-एक प्रदेश पर अवस्थित है। आकाश के जितने स्थान को एक परमाणु घेरता है उसे प्रदेश (Space-point) कहते हैं। ये कालाणु एक दूमरे से नही मिलते। वे अविभाज्य अरूपी और निष्क्रिय हैं।

काल द्रव्य का एक महत्वपूर्ण पहलू जो उसे पञ्च द्रव्यों से अलग करता है, वह यह है कि 'काल की गति एक ही दिशा' में है (Time is unidirectional)। सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक एडिंगटन ने उसे 'समय का तीर' कहकर पुकारा है। जैसे तीर एक ही दिशा को सीधा चला जाता है वैसे ही काल की चाल है जो धनुष से छूटे हुए तीर की भाँति सीधा एक ही दिशा में गमन करता है। तात्पर्य यह है कि ये कालाणु आकाश में इस तरह व्यवस्थित हैं कि वे एक लम्बी कतार के रूप में विद्यमान हैं।

आइन्सटाइन ने आकाश और काल को विचित्र रूप में मिश्रित कर दिया है। उसके अनुसार बिना पुद्गल के आकाश और काल की कल्पना ही नहीं की जा सकती। जैनों के अनुसार एक-एक कालाणु लोकाकाश के प्रत्येक प्रदेश पर निष्क्रिय रूप से पड़ा है। लोकाकाश के बाहर आकाश के अतिरिक्त और कोई द्रव्य नहीं पाया जाता। जब वहां पुद्गल ही नहीं है तो काल द्रव्य का अस्तित्व भी वहाँ नहीं हो सकता। 'न्यूटन' ने काल, आकाश और पुद्गल की स्वतन्त्र सत्ता मानी है। उसके अनुसार यह सारी दुनियां सिकुड़कर यदि एक ही पाइन्ट पर आ जाय तो समय तो निरन्तर चलता ही चला जायेगा। समय की अनन्तता के विषय में जैन-दृष्टि प्रो० एडिंगटन के उस वाक्य का समर्थन करती है जिसमें यह कहा गया है 'आकाश की गोलाई के कारण दिशायें तो पलट जाती हैं लेकिन समय में परिवर्तन नहीं होना' (There is a bending round by which East ultimately becomes West but no bending by which Before ultimately becomes After).

चूंकि इस ब्रह्माण्ड की एक सीमा है, कोई भी पदार्थ अथवा शक्ति की किरण ब्रह्माण्ड की सीमा पर पहुंचकर विपरीत दिशा में परावर्तित (Reflected) हो जाती है अथवा पूर्व को जाती-जाती पश्चिम को जाने लगती है किन्तु काल का ऐसा परावर्तन नहीं होता अर्थात् भूतकाल परावर्तित होकर भविष्य में नहीं बदल सकता। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि समय का न कोई आदि है और न अन्त है।

पश्चिम में जिस तरह डेमोक्राइटस ने और भारत में ऋषि कणाद और जैनाचार्यों ने पुद्गल के परमाणुओं की सर्व प्रथम कल्पना की, उसके बाद डाल्टन का परमाणुवाद निकला पश्चात् जर्मन प्रो० मैक्सप्लेक ने यह सिद्ध कर दिखाया कि एनर्जी अथवा ऊर्जा के भी एटम्स (अणु) होते हैं और ये छोटे बड़े होते हैं। प्रकाश के एटम्स को फोटौन (Photon) कहते हैं। छोटे-बड़े होने के कारण ही ये भिन्न-भिन्न रंगों को उत्पन्न करते हैं। लाल रंग के फोटौन छोटे होते हैं और नीले रंग के बड़े। यहां तक तो बात ठीक है मगर जैनाचार्यों की विशेषता यह है कि उन्होंने समय को भी एटौमिक बताया अर्थात् समय के भी एटम्स (अणु) होते हैं और उन्हें कालाणु कहते हैं। साइन्स में यह बात अभी तक नहीं निकली, भविष्य में निकल सकती है।

जैन शास्त्रों में व्यवहार काल का निम्न पैमाना दिया हुआ है :—

६० प्रतिविपलांश	का	१ प्रतिविपल
६० प्रतिविपल	का	१ विपल
६० विपल	का	१ पल
६० पल	का	१ घड़ी अर्थात् २४ मिनट

$$\therefore \text{१ मिनट} = \frac{६० \times ६० \times ६० \times ६०}{२४}$$

$$= ५४०००० \text{ प्रतिविपलांश}$$

जैन शास्त्रों में प्रतिविपलाँश को समय की सबसे छोटी यूनिट माना है और यह एक सेकिण्ड का नो हजार वां भाग

है। समय की नाप के लिये इतनी सूक्ष्मता तक पहुंचना सर्वथा सराहनीय है।

हिन्दू ग्रन्थों में भी किञ्चित् नाम भेद से ५४०००० तत्परस की एक घड़ी बतलाई है अर्थात् टाइम की छोटी से छोटी यूनिट तत्परस है और यह एक सेकिण्ड का नो हजार वां भाग है। तात्पर्य यह है कि हिन्दुओं का तत्परस और जैनों का प्रतिविपलांश एक ही चीज है। समय का एक और पैमाना हिन्दू ग्रन्थों में उपलब्ध होता है। उसके अनुसार एक सेकिण्ड में २०२५०० त्रुटियां होती हैं। इस पैमाने के अनुसार न्यूनतम समय १ सेकिण्ड का २०२५०० वां भाग होता है।

७. अनेकान्त

अनेकान्त, स्याद्वाद, सप्तभङ्गी आदि शब्द लगभग एक ही बात को व्यक्त करने के लिये प्रयोग में लाये गये हैं। यह जैन-दर्शन की संसार के लिये एक अनुपम देन है, जो दुनिया की किसी भी फिलासफी में नहीं पाई जाती। शंकराचार्य जैसे उद्भट विद्वान ने भी इसको समझने में भूल की और जैन साहित्य का बड़ा अपकार किया। संसार की कोई भी भाषा क्यों न हो वह अपूर्ण है और उसके द्वारा जो भी बात व्यक्त की जाती है उसका सर्वदा सर्वत्र एक ही अर्थ नहीं निकाला जाता। भिन्न-भिन्न रुचि के अनुसार एक ही बात के अनेक अर्थ लगाये जाते है। चूंकि संसार के पदार्थों में अनेक विरोधी गुण पाये जाते है इसलिये उनके गुणों का भिन्न-भिन्न दृष्टियों से वर्णन करने पर ही सम्पूर्ण वर्णन हो सकता है। उदाहरण के तौर पर कुचला या शंखिया (Strychnin or Arsenic) दो द्रव्य हैं। डाक्टर तथा वैद्य इनका प्रयोग शक्तिवर्द्धक (Tonic) के रूप में करते हैं, किन्तु इनकी मात्रा अत्यन्त न्यून होती है। जब ये ही पदार्थ अधिक मात्रा में सेवन कर लिये जायें तो जीवन का अन्त हो जाता है; अर्थात् अधिक मात्रा में वे जहर का काम करते हैं। अब कोई यह प्रश्न करे कि शंखिया जहर है या शक्ति-वर्द्धक पदार्थ ? तो उसका उत्तर यह होगा कि थोड़ी मात्रा में लेने से वह टॉनिक है और अधिक मात्रा में लेने से जहर।

यदि वह पुनः प्रश्न करे कि मैं आपके उत्तर से सन्तुष्ट नहीं हूँ, मैं तो इस पदार्थ का मूल स्वभाव जानना चाहता हूं, तो उसका यह उत्तर होगा कि इसका मूल गुण शब्दों में व्यक्त नहीं किया जा सकता। न्यायशास्त्र की भाषा में कुचला जहर हो सकता है, नहीं भी हो सकता है (S may be P may not be P, may and may not be P', अर्थात् strychnin may be poison, may not be poison, and may and may not be poison simultaneously) और उसका मूल स्वभाव अव्यक्त है। इसी तरह से प्रत्येक वस्तु के सम्बन्ध में ऐसे तीन भंग उत्पन्न हो जाते हैं और इन्ही के परस्पर संघटन से सात भंगों की उत्पत्ति होती है, जिनके नाम इस प्रकार हैं :—

(१) स्याद अस्ति, (२) स्याद नास्ति, (३) स्याद अस्ति नास्ति, (४) स्याद अव्यक्तव्य, (५) स्याद अस्ति अव्यक्तव्य, (६) स्याद नास्ति अव्यक्तव्य, (७) स्याद अस्ति नास्ति अव्यक्तव्य। इसको एक स्पष्ट उदाहरण से समझा जा सकता है :—यदि हम अस्ति, नास्ति, अव्यक्तव्य को नोन, मिर्च, खटाई की संज्ञा दें तो इनके चार और भिन्न मिश्रण बन सकते हैं, जैसे नोन मिर्च, मिर्च खटाई, नोन खटाई और नोन मिर्च खटाई।

एक रोचक दृष्टान्त है जो बहुधा शास्त्रों में सुना जाता है कि किसी नगर में सात अन्धे व्यक्ति रहते थे। उस नगर में एक बार हाथी आया और वे उसे देखने के लिये निकल पड़े। सातों अन्धे हाथी के विभिन्न अंगों पर हाथ फेरकर पुनः एक

स्थान पर एकत्रित हुये। जिसने हाथी के पांव पर हाथ फेरा था वह कहने लगा—हाथी खम्भे के समान होता है। जिसके हाथ में उसकी पूंछ आई थी, उसने हाथी को रस्सी के समान बताया। जिसने कान को टटोला था वह उसे सूप के समान बताने लगा। इसी प्रकार सातों अंधों ने अपनी-अपनी सूझ के अनुसार हाथी के स्वरूप का वर्णन किया। वास्तविकता यह है कि सातों वर्णन एक जगह एकत्रित करने पर ही हाथी का सम्पूर्ण वर्णन बन सकता है। एक का वर्णन दूसरे से मेल न खाता हुआ भी अपनी-अपनी दृष्टि से सही है। हम कहेंगे कि हाथी के पांव खम्भे के सदृश होते हैं, उसकी पूंछ रस्सी जैसी होती है, उसके कान सूप के समान होते हैं इत्यादि। इससे सिद्ध होता है कि किसी भी वस्तु का सम्पूर्ण वर्णन करने के लिये उसे भिन्न भिन्न दृष्टिकोणों से वर्णन करना पड़ेगा। यदि किसी वस्तु का वर्णन पांचों इन्द्रियों और मन के आश्रय से भी किया जाय तो भी एक ही वस्तु का वर्णन भिन्न-भिन्न पुरुषों द्वारा भिन्न-भिन्न ही होगा। यदि दस व्यक्ति अपने सामने बैठे हुये किसी अन्य व्यक्ति की आकृति का वर्णन लिखने बैठ जायें तो उनका वर्णन एक दूसरे से नहीं मिलेगा। सामने बैठे हुये मनुष्य की आकृति तो एक ही है किन्तु दस व्यक्ति उस आकृति का दस तरह से वर्णन करेंगे। इससे ज्ञात होता है कि हमारी भाषायें कितनी कमजोर हैं। आइन्सटाइन के शब्दों में 'परमात्मा की भाषा गणित है।' उसका प्रत्येक नियम गणित के सूत्रों में बँधा हुआ है और गणित के सूत्र कभी भी झूठे नहीं होते। संसार के सभी मनुष्य दो और दो का जोड़

चार कहते हैं, पांच या तीन कोई नहीं कहता। रिलेटिविटी व कॉमन सैन्स (Relativity and Common sense) नामक पुस्तक में आइन्सटाइन का एक त्रिकोणमितीय समीकरण (Trigonometrical equation) उद्धृत किया है जिसमें पचास Term हैं। इसको कागज पर प्लॉट करने से मनुष्य की नाक बन जाती है। आइन्सटाइन का कहना यह है कि दुनियां में कहीं भी कोई व्यक्ति यदि उस समीकरण को प्लॉट करेगा तो उसको वही नाक मिल जायेगी ; उसमें व्यक्तिगत विभिन्नता नही होगी। अतएव उस नाक का एक-रूपीय वर्णन गणित का केवल वही एक समीकरण है। कहने का तात्पर्य यह है कि भाषा की और अपनी स्वयं की अपूर्णता के कारण मनुष्य जो कुछ कहता है वह भिन्न-भिन्न व्यक्तियों के हाथ में पड़कर झगड़े का कारण बन जाता है। अतएव यदि हम अपनी बात को सर्वोपरि सम्पूर्ण बनाना चाहते हैं तो उसमें सभी दृष्टिकोणों का समावेश होना चाहिये। भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों से किया हुआ विवेचन सम्पूर्ण होता है और इसे ही अनेकान्त कहते हैं।

समन्तभद्र आचार्य ने एक स्थान पर लिखा है कि संसार के सभी पाखण्डों के समूह का नाम जैनधर्म है। यहाँ पर 'पाखण्ड' शब्द का विशेष अर्थों में प्रयोग किया गया है। केवल एक ही दृष्टिकोण से कही गई बात पर जो दुराग्रह करता है उसे पाखण्डी कहते हैं। भारत के षड्दर्शनों में जो विभिन्नता पाई जाती है वह भी इसी प्रकार की है। प्रत्येक दर्शन किसी एक दृष्टिकोण से सत्य की खोज करने में सफल

रहा है, किन्तु वह सत्य सम्पूर्ण सत्य नहीं है। सम्पूर्ण सत्य तक पहुंचने के लिये सभी दर्शनों को एक जगह एकत्रित करना पड़ेगा। पाखण्ड और सत्य में केवल इतना ही अन्तर है कि पाखण्डी कहता है यह बात ऐसी ही है सत्यवादी कहता है कि यह बात ऐसी भी है। 'ही' में वस्तु के अन्य धर्मों का निराकरण होता है जबकि 'भी' में अपने धर्म के साथ अन्य धर्मों का सापेक्षता से ग्रहण होता है। दोनों में यह अन्तर है।

जैनाचार्यों ने सत्य को दो भागों में विभक्त कर दिया है :—(१) व्यवहार सत्य (True) और (२) निश्चय सत्य Really true, आइन्सटाइन ने कहा है कि कोई बात व्यवहार सत्य हो सकती है लेकिन यह जरूरी नहीं कि वह निश्चयात्मक सत्य भी हो (One thing may be true but not really true)। उन्होंने उसे एक उदाहरण देकर समझाया है और उसको समझने के लिये चन्द बातें जान लेना आवश्यक है।

विद्युत दो प्रकार की होती है—अचल और चल। अचल विद्युत को विद्युत आदेश (Electric Charge) कहते हैं और चल विद्युत को विद्युत धारा (Electric Current)। अचल विद्युत के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र नहीं होता अर्थात् जब कोई चुम्बकीय सुई उसके पास लाई जाती है तो सुई विचलित नहीं होती जिससे चुम्बकीय क्षेत्र का अभाव सिद्ध होता है, किन्तु यदि किसी तार के अन्दर विद्युतधारा बह

रही हो और उसके पास चुम्बकीय सुई लाई जावे तो वह तुरन्त विचलित हो जाती है। इससे प्रकट होता है कि धारा-वाही तार के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र विद्यमान है। दूसरे शब्दों में हम कह सकते हैं कि धारावाही तार चुम्बक का काम कर रहा है। (Movement of charge is current or Charge in motion is Current)

आइन्सटाइन ने निम्न उदाहरण पेश किया :—

एक मनुष्य के सामने एक स्टेशनरी इलैक्ट्रिक चार्ज रखा है और वह प्रयोग द्वारा यह जानना चाहता है कि उस विद्युत आवेश के चारों ओर क्या कोई चुम्बकीय क्षेत्र है ? वह एक चुम्बकीय सुई उसके पास लाता है, वह सुई विचलित नही होती अर्थात् किसी दिशा में आकर्षित नही होती। प्रयोग कर्ता इस निष्कर्ष पर पहूंचता है कि इसके चारों ओर कोई चुम्बकीय क्षेत्र नही है।

किसी दूरवर्ती ग्रह पर बैठा हुआ एक दूसरा वैज्ञानिक पृथ्वी पर धरे हुये उसी स्टेशनरी चार्ज के ऊपर प्रयोग करता है यह जानने के लिये कि उसके चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र है या नही; और पृथ्वी पर धरा हुआ वह चार्ज पृथ्वी की गति के कारण वह स्वयं गतिमान है और गतिमान चार्ज के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र होता है। इसलिये दूरवर्ती ग्रह पर बैठे हुये वैज्ञानिक को यह निष्कर्ष मिलता है कि उस चार्ज के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र है। फलत: हम यह कह सकते हैं कि पृथ्वी पर बैठे हुये वैज्ञानिक की अपेक्षा चार्ज के चारों ओर चुम्बकीय क्षेत्र नहीं है और पृथ्वी से बाहर दूरवर्ती प्रेक्षक

की अपेक्षा चुम्बकीय क्षेत्र है। परस्पर विरोधी इन दो निष्कर्षों का समाधान कैसे हो सकता है ? आइन्सटाइन के शब्दों में दोनों ही निष्कर्ष सत्य हैं, लेकिन वास्तविक सत्य या निश्चयात्मक सत्य नहीं। उन्हें आपेक्षिक सत्य तो कह सकते हैं, निश्चयात्मक सत्य का किसी भी प्रयोग द्वारा पता नहीं चल सकता। आइन्सटाइन के शब्दों मे हम केवल आपेक्षिक सत्य ही जान सकते हैं, निश्चयात्मक सत्य केवल त्रिकालज्ञ भगवान ही जानते हैं। (We can only know the relative truth, the Absolute truth is known only to the Universal Observer)

हमारे जितने भी वक्तव्य होते हैं वे किसी न किसी की अपेक्षा से होते हैं, उदाहरणस्वरूप—यदि हम रेडियो ट्रान्समीटर द्वारा अखिल दुनिया से यह सवाल पूछें कि इस समय क्या बजा है ? तो स्पष्ट है कि दुनिया के विभिन्न भागों से आये हुये उत्तर एक दूसरे से सर्वथा भिन्न होंगे। यदि हिन्दुस्तान में रहने वाले ने उत्तर दिया कि इस समय रात्रि के ८॥ बजे हैं तो लन्दन से बोलने वाला कहेगा कि इस समय दिन के ३ बजे हैं। दोनों का उत्तर भिन्न-भिन्न होने पर भी अपनी-अपनी अपेक्षा से सही है किन्तु पूछने वाले को इस प्रश्न का उत्तर नहीं मिला कि इस समय क्या बजा है ? पूछने वाला यह नहीं पूछ रहा कि इस समय हिन्दुस्तान में क्या बजा है या लन्दन में क्या बजा है। उसका तो प्रश्न केवल इतना है कि इस समय क्या बजा है ? जैनागम की भाषा में इसका उत्तर अव्यक्त है अर्थात् वह शब्दों द्वारा

व्यक्त नहीं किया जा सकता। आइन्सटाइन की भाषा में इसका उत्तर कोई त्रिकालज्ञ ही दे सकता है जो समस्त ब्रह्माण्ड को युगपद् देख रहा है।

इसी प्रकार एक समानान्तर प्रश्न पूछा जा सकता है कि हिमालय पहाड़ कहां है? चीन में रहने वाला उत्तर देगा कि दक्षिण में है, लंका निवासी उत्तर देगा कि उत्तर में है, किन्तु इसका भी निश्चयात्मक उत्तर नहीं दिया जा सकता। उत्तर किसी न किसी अपेक्षा से होगा। अभिप्राय यह है कि यदि किसी वस्तु का पूर्ण निरूपण करना हो तो सभी अपेक्षाओं को ध्यान में रखकर करना होगा।

जब वैज्ञानिक जगत में सापेक्षवाद की धूम मची तो एक बार आइन्सटाइन से उनकी पत्नी ने पूछा, मैं सापेक्षवाद (Theory of relativity) को जानना चाहती हूँ। उन्होंने कहा मैं कैसे समझाऊं? इसका सीधा उत्तर यह है कि जब एक मनुष्य एक सुन्दर लड़की से बात कर रहा हो तो उसे एक घण्टा एक मिनट जैसा लगेगा और उसे ही एक गर्म चूल्हे पर बैठा दिया जाय तो एक मिनट एक घण्टे के बराबर लगने लगेगा।'

वस्तु अनन्तधर्मी है, उसे अनन्त अपेक्षाओं से ही समझना होगा। 'तत्वार्थ सूत्र' के पञ्चम अध्याय सूत्र ३२ में इसी बात को यों कहकर व्यक्त किया है 'अर्पितानर्पित सिद्धेः' वस्तु की सिद्धि मुख्य और गौण की अपेक्षा से होती है।

सारांशतः हम कह सकते हैं कि अनेकान्त संशयवाद या

अनिश्चयवाद नहीं है वरन् संसार के अनेक परस्पर विरोधी धर्मों में समन्वय (Unity amongst diversity) स्थापित करने वाला अनुपम सिद्धान्त है। यह मनुष्य को उदार और सहिष्णु बनाता है, परस्पर बन्धुत्व की भावना को बढ़ाता है और जीवन को सुखी बनाने के अनेक रास्ते सुझाता है, इसीलिये परमागम में उसे समस्त नय विलासों के विरोध को नष्ट करने वाला कहा गया है।

८. कर्मवाद

संसार में किसी भी कार्य को करने से पहले मनुष्य के मन में विचार उत्पन्न होता है। विचार उत्पन्न होने से पहले मस्तिष्क में स्पन्दन क्रिया होती है अर्थात् लहरें (Vibrations) पैदा होती हैं। आजकल के विज्ञान ने इन लहरों को कागज पर रिकार्ड करने की विधि निकाल ली है और मानसिक रोगों में ये लहरें अंकित की जाती हैं यह देखने के लिये कि स्वरलहरी सामान्य है अथवा विकृत। तदनुसार चिकित्सा द्वारा मस्तिष्क को ठीक करने का उपचार किया जाता है। मस्तिष्क की लहरों के रिकार्ड को इन्किफेलोग्राम (Encephalogram) कहते हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे एक्स-रे फोटो को रेडियोग्राम कहते हैं।

मनुष्य का मस्तिष्क एक छोटा-सा रेडियो रिसीवर है जो रेडियो की तरह बाहर की लहरों को ग्रहण करता है।

रेडियो रिसीवर का सिद्धान्त यह है कि जहां रेडियो रखा रहता है, संसार के भिन्न-भिन्न कोनों से आई हुई लहरें या रेडियो तरंगें वहां पर विद्यमान होती हैं। उन रेडियो तरंगों में केवल लम्बाई का अन्तर रहता है। ये सब लहरें विद्युत की लहरें होती हैं किन्तु उनकी लम्बाई बराबर नहीं होती। उदाहरणस्वरूप—किसी लहर की लम्बाई २५·१ मीटर है और दूसरी लहर की लम्बाई २५.१२ मीटर है तो वायुमण्डल में इन दोनों का अस्तित्व पृथक्-पृथक् होगा। उन

दोनों लहरों में से किसी को भी बारी-बारी से रेडियो रिसीवर के अन्दर लाया जा सकता है। अगर हम २५.१ मीटर वाली लहर को अन्दर लाना चाहते हैं तो हमें रेडियो के अन्दर २५.१ मीटर की लहर उत्पन्न करनी पड़ेगी। जब दोनों लहरों की लम्बाई बराबर हो जाती है तो बाहर वाली लहर तुरन्त अन्दर आ जाती है और उस लहर पर जो स्टेशन बोल रहा है वह हमें सुनाई देने लगता है। इस क्रिया को स्वर मिलाने की क्रिया अथवा ट्यूनिंग (Tuning) कहा जाता है। यह क्रिया एक घुंडी को घुमाने से सम्पन्न की जाती है जिसे ट्यूनिंग नौब (Tuning knob) कहते हैं। एक संकेतक (Pointer) जो घुंडी को घुमाने से डायल (Dial) पर चलता है उससे मीटर का परिवर्तन मालूम पड़ता रहता है।

जिस प्रकार रेडियो के अन्दर किसी लहर के उत्पन्न करने पर ठीक उसी तरह की लहर बाहर से अन्दर आ जाती है, उसी प्रकार मस्तिष्क के अन्दर जो तरंगें उत्पन्न होती हैं उससे बाहर की तरंगों का मस्तिष्क के अन्दर आश्रव होता है अर्थात् प्रत्येक विचार के साथ मस्तिष्क में तरंगों की उत्पत्ति होती है और वाह्य पुद्गल का हमारी आत्मा के साथ सम्बन्ध होता है। जैन शास्त्रों की भाषा में इसे कर्म वर्गणाओं का आश्रव कहा जाता है। ये कर्म-वर्गणा आत्मा के चारों ओर लेप के रूप में चढ़ जाती हैं। कर्मों के लेप से चढ़ी हुई आत्मा मृत्यु के समय जब शरीर से निकलती है तो पौद्गलिक द्रव्य का सम्पर्क होने के कारण चारों ओर से घेरे हुये पुद्गल उसको अपनी ओर खींचते हैं। न्यूटन के 'गुरुत्वाकर्षण' के जिस सिद्धान्त का

पहले वर्णन कर चुके हैं, उसके अनुसार पुद्गल का एक पिण्ड पुद्गल के दूसरे पिण्ड को आकर्षित करता है। इस पौद्गलिक संसर्ग के कारण ही अशुद्ध जीवात्मा अनेक योनियों में भ्रमण करती है। जीवात्मा का जब इस पुद्गल से पूर्ण विच्छेद हो जाता है तब वह शुद्ध हो जाती है। जिस प्रकार हाइड्रोजन गैस का गुब्बारा हाथ में से छूट जाने पर सीधा ऊपर की ओर जाता है और चलता ही रहता है और यदि वह सूर्य की गर्मी से फटा नहीं तो उस ऊँचाई तक पहुंचेगा जहां कि वायुमण्डल की तहों (Layers) में केवल हाइड्रोजन ही हाइड्रोजन है। यहां पर इतना और बतला देना आवश्यक है कि हाइड्रोजन गैस हवा से १४ गुना हलकी होती है। यदि एक बोतल में पारा, पानी और पैट्रोल एक साथ भर दिये जायें और उन्हें खूब जोर से हिला-चला दिया जाय तो कुछ देर तो वे मिले-जुले से दिखाई देंगे किन्तु कुछ देर रक्खे रहने के पश्चात् पारे की तह सबसे नीचे हो जायगी, उसके ऊपर पानी की तह होगी और चूंकि पैट्रोल उन तीन में सबसे हलका है इसलिये उसकी तह सबसे ऊपर होगी। इसी प्रकार जिस हवा से हम सांस लेते हैं वह नाइट्रोजन, आक्सीजन, हाइड्रोजन, कार्बन-डाइ-आक्साइड और अन्य बहुत-सी गैसों का सम्मिश्रण है। हाइड्रोजन सबसे हलका होने के कारण वायुमण्डल की ऊपर की तहों में पाया जाता है और हाइड्रोजन का गुब्बारा उस ऊँचाई पर पहुंचकर रुक जाता है जहां उसके चारों ओर हाइड्रोजन ही हाइड्रोजन है। इसी प्रकार की क्रिया जीवात्मा के साथ होती है। कह सकते हैं कि जीवात्मा

एक अरूपी पदार्थ है और इस कारण पौद्गलिक द्रव्य हाइड्रोजन से अनन्तगुणा हल्की है, इसलिये पुद्गल का सम्बन्ध छूट जाने पर वह अर्हत के शरीर से निकल कर सीधी वहां तक चली जाती है जहां तक चारों ओर शुद्धात्माये विराजमान हैं। इससे आगे धर्म द्रव्य का अस्तित्व न होने के कारण वे आगे जा ही नहीं सकती। इस स्थान को सिद्धशिला कहा गया है और यह स्थान लोक की सीमा पर स्थित है। इसके आगे अलोकाकाश प्रारम्भ होता है। इस क्रिया को मोक्ष प्राप्त करना कहा जाता है।

कर्म पुद्गल का शरीर के अन्दर आना आश्रव कहलाता है। उसका जीवात्मा से सम्पर्क होना बंध कहलाता है। विचार (रागादिक भाव) निरोध के द्वारा कर्मवर्गणाओं को आने से रोकना संवर कहलाता है और जीवात्मा जब कर्मवर्गणाओं से अपना सम्बन्ध विच्छेद करना शुरू कर देती है, उसे निर्जरा कहते हैं। निर्जरा की क्रिया में कर्म पुद्गल के परमाणु धीरे-धीरे झड़ जाते हैं और जीवात्मा शनैः शनैः अशुद्ध से शुद्ध होने लगती है। यह क्रिया दो तरह से होती है—(१) सविपाक निर्जरा और (२) अविपाक निर्जरा।

सविपाक निर्जरा का अर्थ है कर्मों का विपाक हो जाने के पश्चात् कर्मों का झड़ना। जिस प्रकार वृक्ष पर लगे हुये फल पक जाने पर स्वयं ही झड़ जाते हैं उसी प्रकार जब कर्मों की अवधि पूरी हो जाती है तो वह अपना फल देकर झड़ जाते हैं। दूसरी निर्जरा अविपाक निर्जरा है। इसमें विपाक होने से पहले ही तपश्चरण के द्वारा कर्मरज को

खिराया जाता है। जिस प्रकार सोने में मिला हुआ मल तपाये जाने पर दूर हो जाता है, उसी प्रकार कर्मरज को बिना कर्मों का फल भोगे हुये नष्ट किया जा सकता है। इसलिये आवश्यक है कि हम अपने तप और सदाचरण के द्वारा पूर्व जन्म में किये हुये कर्मों को नष्ट करने में कदाचित् सफल हो सकते हैं।

बहुत से लोगों का विचार है कि मनुष्य अपने भाग्य के इतने अधिक वश में है कि वह स्वतन्त्र रूप से कुछ कर ही नहीं सकता, किन्तु यह धारणा गलत है। मनुष्य कथंचित् कार्य करने में स्वतन्त्र है और कथंचित् भाग्य के वशीभूत। अगर ऐसा नहीं होता तो नये कर्मों का बंध होता ही नहीं। मनुष्य बहुत से कार्य तो ऐसे करता है जो पूर्व जन्म के कर्म फलस्वरूप होते हैं और बहुत से कर्म स्वतन्त्र भी करता है जिनका फल वह आगामी जन्मों में भोगता है।

संसार के अन्य धर्मों में मनुष्य के कर्मों को रिकार्ड करने वाला एक अन्य कर्मचारी होता है जिसे यमराज आदि नामों से पुकारा गया है। मरने के पश्चात् जब किसी व्यक्ति की आत्मा यमराज के सामने पहुंचती है तो यमराज उसका रिकार्ड देखकर उसके लिये न्याय की उचित व्यवस्था करता है किन्तु जैन दर्शनकारों ने इस क्रिया को स्वचालित (Automatic) बना दिया है। उसके कर्मों का रिकार्ड उसकी आत्मा में ही सूक्ष्म पुद्गल के परमाणुओं के रूप में रहता है और ये पुद्गल परमाणु स्वयं ही न्यूटन के नियम के अनुसार उसे स्वयं भिन्न-भिन्न योनियों में आकर्षित करते रहते हैं। यही जैन कर्म सिद्धान्त की विशेषता है।

६. हमारा भोजन

'शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्।' धर्म सेवन करने के लिये आवश्यक है कि व्यक्ति का स्वास्थ्य ठीक रहे। रोगी मनुष्य का मन धर्मध्यान में नही लगता। किसी कवि ने ठीक ही कहा है :—

पहला सुख निरोगी काया, दूजा सुख जो घर में माया।

रोगी मनुष्य के पास कितना ही धन वैभव क्यों न हो, वह उसका उपभोग नहीं कर सकता। अतएव यदि हम नर-भव का पूर्ण लाभ उठाना चाहते हैं तो हमें अपने शरीर को आरोग्य रखना पड़ेगा। शरीर की आरोग्यता हमारे भोजन पर निर्भर करती है। स्वास्थ्य को ठीक रखने के लिये भोजन एक महत्वपूर्ण अंग है। भोजन के मुख्य भाग हैं :—आटा, चावल, दाल, शाक, शक्कर और घी।

अब हम इन सब चीजों पर एक-एक करके विचार करते हैं :—

१. आटा

आटा मुख्यतः गेहूं का होता है। यह आटा पहले हाथ की चक्की या पनचक्की से तैयार किया जाता था और आज अधिकांशतः बिजली की चक्की से तैयार होता है। हाथ की चक्की या पनचक्की से पिसा हुआ आटा सम्पूर्ण रूप से निर्दोष होता है फिर भी जैनशास्त्रों में इसकी भी एक मर्यादा कायम की गई है।

यदि वर्षा की ऋतु हो तो जो आटा उपयोग में लाया जावे वह ३ दिन से अधिक का पिसा हुआ नहीं होना चाहिये। यदि ग्रीष्म ऋतु हो तो यह अवधि ५ दिन है और शीत ऋतु में इसकी अवधि ७ दिन बतलाई गई है। जिस प्रकार आपने सुना होगा कि डाक्टरों द्वारा लगाये जाने वाले प्रत्येक इन्जैक्शन की अवधि होती है और जिस इन्जैक्शन की अवधि बीत चुकी हो उसको लगाने से लाभ के बजाय हानि ही होती है और वह सर्वथा त्याज्य है। ठीक उसी प्रकार ऋतु के अनुसार अवधि बीते हुये आटे की रोटी स्वास्थ्य को हानि ही पहुंचाती है, कारण यह कि उसमें दुर्गंध आने लगती है। यह तो हुई हाथ के पिसे आटे की बात।

बिजली की चक्की में गेहूँ के दाने की जो दुर्गति होती है वह दो कारणों से होती है—(१) अधिक ताप और (२) अधिक दबाव। गेहूं के दाने के अन्दर गेहूं का बीज होता है जिसे अंग्रेजी में गेहूं का बीज (Wheat germ) कहते हैं। इस बीज के अन्दर ठीक उसी तरह तेल भरा रहता है जैसे तिल के दानों में भरा रहता है। इस तेल को गेहूं के बीज का तेल (Wheat germ oil) या विटामिन 'E' कहते हैं। बिजली की चक्की के पाटों के बीच में दबाव अत्यधिक होने के कारण गेहूँ के प्रत्येक दाने के अन्दर ये बीज फूट जाते हैं और उनसे निकले हुये तेल में आटा सन जाता है। हाथ के पिसे हुये आटे में ये सब क्रियायें नहीं होतीं, अर्थात् गेहूं का विटामिन 'E' नष्ट नहीं होता।

आपने अनुभव किया होगा कि हाथ की चक्की से पिसे

हुये आटे के मुकाबले में बिजली की चक्की से निकला हुआ आटा कहीं ज्यादा गर्म होता है। बिजली की चक्की में पिसा हुआ आटा एक तो तेल में सन जाता है और तेल में सना हुआ यह आटा खूब गर्म हो जाता है। दोनों ही कारणों से बिजली की चक्की का आटा हाथ की चक्की के आटे के मुकाबले में बहुत जल्दी सड़ जाता है और इसी सड़े हुये आटे की रोटियां हम नित्य प्रति खाते हैं। उससे तो हानि होती ही है, साथ ही आटे का विटामिन 'E' नष्ट हो जाने के कारण मनुष्य की प्रजनन-शक्ति भी कम हो जाती है। कुछ वर्ष हुये लन्दन की एक पत्रिका में बांझ स्त्रियों के लिये सन्तान देने वाला एक नुस्खा निकला था। उसमें हाथ का पिसा हुआ चोकर समेत चक्की का आटा और ताजे अंकुर फूटे हुये गेहूं के दाने मिलाकर रोटी बना के खाने की सिफारिश की गई थी और यह दावा किया गया था कि कुछ समय तक इस प्रकार की रोटी खाने से बाँझ स्त्री के भी सन्तान हो सकती है।

आजकल सभी शहरों में बिजली की चक्कियां लगी हुई हैं और चूंकि इसमें आटा सस्ता पिस जाता है इसलिये हमारा ध्यान इस प्रणाली के दोषों की तरफ नहीं जाता। परिणाम यह हुआ है कि समाज में एक बहुत अच्छी प्रथा का अवसान हो गया। एक जमाना था जब गरीब और अमीर सभी घरों में स्त्रियां न्यूनाधिक अपने हाथ से आटा पीसती थी। यह उनके लिये एक अच्छा हलका व्यायाम होता था। पर्दे का चलन अधिक होने के कारण व्यायाम का कोई और रूप

उनके लिये उपयुक्त नहीं बैठता था। इस व्यायाम के द्वारा वह हिस्टीरिया जैसे भयंकर रोगों से मुक्ति पाती थीं। आज घर घर में विशेषकर पढ़ी-लिखी समाज में नवयुवतियां हिस्टीरिया से पीड़ित हैं। यह रोग मजदूर पेशेवर स्त्रियों में नहीं पाया जाता। अतः हाथ के पिसे हुए आटे का व्यवहार न करने के कारण हम अपने स्वास्थ्य को कई प्रकार से खराब कर रहे हैं। अगर भगवान हमें सुबुद्धि दे तो पुनः एक बार हमको एक स्वर में कहना चाहिये 'चल री चकिया घर घर घर।'

नोट — आज हमारी रक्षक सरकार ही भक्षक का कार्य कर रही है। समाचार पत्रों में एक दुखद समाचार प्रकाशित हुआ है कि खाद्यान्न की कमी होने के कारण सूखी हुई मछलियों का आटा सरकार तैयार कराकर बाजार में बिकवा रही है और अब उसकी दुर्गंध भी नष्ट कर दी गई है। ऐसी हालत में यह और भी जरूरी हो जाता है कि हम अपने घर की चक्की का पिसा हुआ आटा ही व्यवहार में लावें।

२. चावल

दूसरा खाद्य पदार्थ है चावल। इस युग में सभी चीजें या तो नकली बन गई हैं या उनमें मिलावट होती है। मनुष्य मनुष्यत्व से इतना गिर गया है कि अपने स्वार्थ में अंधा होकर वह यह सोचता ही नहीं कि मेरे ऐसा करने से प्राणियों का कितना अहित हो सकता है। हल्दी में पीली मिट्टी,

धनिये में घोड़े की लीद, काली मिर्च में पपीते के सूखे हुए बीज इत्यादि मिलावटें बिलकुल आम हो गई हैं बीमारों को दिया जाने वाला साबूदाना भी नकली आ गया है। दवाइयां और इन्जैक्शंस भी नकली बिक रहे हैं। ऐसी सूरत में चावल भी इस रोग से कैसे बच सकता था ? टेपियोका (Tapioca) से नकली चावल बनने लगे। समझ में नहीं आता कि कोई भला आदमी क्या खाये क्या पिए ? फिर भी चावल के व्यवहार में एक बात का ध्यान रखना आवश्यक है। धान के छिलके को मशीनों द्वारा साफ करके और पालिश करके जो चावल बाजार में बिकता है उसे हर्गिज नहीं खाना चाहिये। धान के छिलके के नीचे भूरे रंग का एक पदार्थ चावल पर चढ़ा रहता है जिसे विटामिन B_1 कहते हैं। मशीन में साफ किये हुए चावल से विटामिन B_1 बिलकुल साफ या नष्ट हो जाता है। इस चावल को खाने से बेरी-बेरी (Beri-beri) का रोग हो जाता है। यह रोग बंगाल में अधिकांश होता है, जहां पालिश किये हुये चावल का अधिक व्यवहार है। बेरी-बेरी रोग में जठराग्नि बिलकुल नष्ट हो जाती है और शरीर पर सूजन आ जाती है। यह रोग शरीर में विटामिन B_1 की कमी से उत्पन्न होता है और बड़ा ही कष्टसाध्य है।

धान से चावल बनाने की पुरानी विधि यह थी कि घर की स्त्रियां धान को ओखली में डालकर लकड़ी के मूसल से उसे कूटती थीं। ऐसा करने से धान का छिलका तो पृथक हो जाता था किन्तु विटामिन B_1 की तह उससे चिपकी रहती थी ऐसे चावल को खाने से बेरी बेरी का रोग नहीं

होना। अतएव यह आवश्यक है कि जिस प्रकार हाथ की चक्की का पिसा हुआ आटा व्यवहार में लाना हितकर है उसी प्रकार हाथ का यह कुटा हुआ चावल व्यवहार में लाना चाहिये और नकली चावल से सावधान रहना चाहिये।

३. दाल

भोजन का तीसरा जरूरी अंग है दाल। दालों के अन्दर एक पदार्थ होता है जिसे प्रोटीन (Protein) कहते हैं। जिस प्रकार किसी भवन का निर्माण बिना ईंट या पत्थरों के नहीं हो सकता उसी प्रकार बिना प्रोटीन के किसी भी शरीर की रचना नहीं हो सकती अर्थात् प्रोटीन रूपी ईंटों से हमारे शरीर का भवन बना है। जीवन की दैनिक क्रियाओं में जो रात-दिन शरीर के अन्दर टूट-फूट होती रहती है, उसकी मरम्मत के लिये भी प्रोटीन की आवश्यकता होती है। मांसाहारियों के भोजन में तो उत्तम प्रकार का प्रोटीन सभी प्रकार के मांस में मिल जाता है किन्तु शाकाहारियों के लिये दाल ही प्रोटीन का प्रमुख साधन है। यद्यपि जीव विज्ञान शास्त्रियों का कहना है कि दालों का प्रोटीन घटिया किस्म का है। भगवान का शुक्र है कि दालों में मिलावट की बात अभी सुनने में नहीं आई।

४. दूध

गाय का दूध विशेषकर श्यामा गाय का, भोजनों में सबसे उत्तम पदार्थ है। डाक्टरों की भाषा में इसको Most perfect food बतलाया गया है, अर्थात् सुखी जीवन के

लिये और स्वास्थ्य को बनाये रखने के लिये जिन-जिन अनेक पदार्थों की आवश्यकता होती है वे सभी पदार्थ दूध में पाये जाते हैं। यदि गाय स्वस्थ हो और उसको पुष्ट भोजन दिया जाय तो उसका दूध विशेष गुणकारी होता है। वैसे तो गाय का दूध विशेषकर धारोष्ण दूध बुद्धिवर्द्धक और आयुवर्द्धक बतलाया गया है, उसमें ये गुण और विशेषरूप से बढ़ जाते हैं यदि नागोरी असगध वच और विधारा आदि पदार्थ गाय की कुट्टी में काटकर मिला दिये जायं। आयुर्वेद में तो यहां तक विधान पाया जाता है कि राजयक्ष्मा के रोगियों को केवल उस गाय का ही दूध पिलाकर अच्छा किया जा सकता है, जिसके चारे में राजयक्ष्मा नाशक औषधियां मिला दी गई हों। औषधियों का गुण दूध में प्रवेश कर जाता है। जहां गाय का दूध स्फूर्तिदायक है वहां भैंस का दूध मनुष्य को सुस्त और मोटा बनाता है।

बाहर के देशों में केवल गाय का ही दूध पिया जाता है। कोई-कोई लोग बकरी का दूध भी पीते हैं क्योंकि वह जल्दी पच जाता है। हमारे देश में गाय को बड़े सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है। हाल में ही रूस में जो वैज्ञानिक गवेषणायें हुई हैं उसे सुनकर आपको आश्चर्य होगा।

एटम बम फूटते समय जो रेडियो सक्रिय धूल हवा मे फैलती है वह वर्षा के पानी में घुलकर शाक, सब्जी के खेतों में पत्तों पर जम जाती है। सब्जी के इन पत्तों को जब पशु चरते हैं तो अधिकांश की मृत्यु हो जाती है किन्तु वैज्ञानिक प्रयोगों से यह सिद्ध हुआ है कि गाय जब इन पत्तों को खाती

है तो वह न केवल इस जहरीली धूल से अपनी रक्षा करती है वरन् उसके थनों में कोई ऐसा यन्त्र लगा है जो उन धूल कणों को दूध में जाने से रोकता है। इस प्रकार उस जहर को भोले शंकर की तरह वह स्वयं हजम कर लेती है और अपने दूध को दूषित न होने देने के कारण उससे अपने बच्चों (दूध पीने वालों) की रक्षा करती है। इस समाचार से हमारी दृष्टि में गाय का महत्व और उसका आदर और भी अधिक बढ़ जाता है। * (देखिये 'कल्याण' अगस्त १९७०)

अमेरिका जैसे देश में गाय के दूध की खपत ४ लीटर प्रति व्यक्ति है और दूध में पानी मिलाने की सजा मौत है। हमारे देश मे जिसके सम्बन्ध मे कहा जाता है कि यहां कभी दूध की नदियां बहती थी, दूध की खपत प्रति व्यक्ति १ तोले से भी कम है। इसके कई कारण हैं—एक तो यह कि हमारी सरकार विदेशी मुद्रा कमाने के लिये गाय के मांस को विदेशों मे निर्यात करती है जिससे हमारे देश में पशुधन की बहुत कमी हो गई है और दूसरा कारण है कि निकम्मे से निकम्मा दूध भी इतना महंगा है कि वह जन साधारण की पहुंच से बाहर है, जिसके कारण हमारे देश में चाय का प्रचलन बहुत बढ़ गया है। कोई-कोई तो दिन में दस-बारह बार चाय पान करते हैं। चाय पान विष-पान के समान ही है। चाय में केफीन (Caffein) नाम का जो मादक द्रव्य पाया जाता है

* रूसी वैज्ञानिकों ने गाय के सम्बन्ध में यह भी खोज की है कि यदि उसका गोबर घरों की छतों पर लीप दिया जाय तो एटमबम का दूषित विकिरण मकान के अन्दर नहीं घुसता।

वह साक्षात् जहर ही है। यह वीर्य को पतला करता है और नींद में बाधा उत्पन्न करता है, फिर भी इसकी लोकप्रियता दिनोंदिन बढ़ती जाती है।

वैज्ञानिकों ने नकली दूध भी तैयार कर दि । है कोनूर न्यूट्रिशन लेबोरेटरी (Cnoor Nutrition Laboratory) में मूंगफली की गिरी से। इसका खूब प्रचार किया जा रहा है और इसका दही भी जमाया जाता है। इसके व्यवहार से क्या दुखद अथवा सुखद परिणाम निकलेंगे यह तो भविष्य ही बतलाएगा, किन्तु यह बात कभी न भूलियेगा कि कृत्रिम साधनों द्वारा बनाया गया कोई भी पदार्थ कुदरती पदार्थ के गुणों का सहस्रांश भी मुकाबला नहीं कर सकता।

५. घी

भोजन का सबसे पुष्टिकारक अंग है घी। बालपन और जवानी की उम्र में शाकाहारियों के लिये घी ही एक ऐसा पदार्थ है जो शरीर के रगपुट्ठों को बलिष्ठ बनाता है। हां, वृद्धावस्था में इसका अधिक सेवन नहीं करना चाहिये; क्योंकि घी के अन्दर जो Cholesterol नाम का पदार्थ रहता है वह दिल के अन्दर जमा होकर दिल की बीमारी पैदा कर देता है और हार्टफेल का कारण बन सकता है। गाय का घी* सबसे श्रेष्ठ कहा गया है। इसमें एक रासायनिक पदार्थ

---

* रूसी वैज्ञानिकों ने यह भी खोज की है कि गाय के घी से हवन करने पर जो धुंआ उठता है उससे वायु में फैले हुये एटमबम विस्फोट की गैसों का कुप्रभाव प्राणियों पर बहुत कम हो जाता है।

होता है जिसे शारीरिक वृद्धि का मूल कारण (Growth promoting factor) कहते हैं। सात वर्ष की आयु तक बच्चा बहुत तेजी से बढ़ता है। गाय का घी खिलाने से उसकी उठान Growth promoting factor के कारण अच्छी बैठती है। जितने नकली प्रकार के घी चले हैं उनमें यह रासायनिक पदार्थ नहीं पाया जाता। जिन घरों में प्रारम्भ से ही नकली घी का व्यवहार होता है वहां बच्चे प्रायः ठिगने ही रह जाते हैं।

प्रश्न यह उठता है कि नकली घी बनाने की आवश्यकता क्यों पड़ी ? समाज के अन्दर एक गलत भावना पाई जाती है कि लोग घी खाने वालों को अमीर और सम्पन्न समझते हैं और तेल खाने वालों को गरीब और हेय समझा जाता है। इस भावना को मिटाने के लिये वैज्ञानिकों ने तेल को घी में परिवर्तित कर दिया। नकली घी असली के मुकाबले में काफी सस्ता आता है इसलिये मध्यम वर्ग के लोग इसे आसानी से खरीद सकते हैं और अपनी हीनता की भावना को उतार फेंकने में सफल होते हैं। उन्हें भी यह अहसास होता है कि हम घी भी खा रहे हैं।

अब नकली घी किस प्रकार तैयार किया जाता है उस प्रक्रिया को समझाने की चेष्टा की जाती है—

नकली घी के लिये एक तेल की आवश्यकता होती है। यह तेल तिल का हो सकता है, बिनौले का, मूंगफली का, महुए का, सोयाबीन का कोई सा भी तेल सभी तेल एकसा ही काम

देते हैं; मगर बनाने वाले सस्ते से सस्ता और घटिया से घटिया तेल इस काम के लिये व्यवहार में लाते हैं ताकि उन्हें अधिक मुनाफा हो। इस तेल को कास्टिक सोडे की सहायता से साफ करके खौलते हुये तेल में बड़े दबाव और वेग के साथ हाइड्रोजन गैस छोड़ी जाती है किन्तु जब तक तेल में निकल (Nickel) नामक धातु का महीन पाउडर न मिला हो, तब तक हाइड्रोजन और तेल का सयोग नही होता। निकल की मौजूदगी में हाइड्रोजन तेल को जमा देती है जिसे Hydrogenated oil कहते है। गला कर छानने पर निकल पृथक् कर दी जाती है। किन्तु यह हाइड्रोजिनेटिड ऑयल रंग में बहुत ही पीला होता है और घी के नाम पर नही बिक सकता, अतएव इसके रंग को उड़ाने की कोशिश की जाती है। नकली घी की यह संक्षिप्त प्रक्रिया है।

सन् १९४७ में जब कांग्रेस ने शासन की बागडोर संभाली तो सरदार पटेल ने रेडियो पर यह घोषणा स्वयं की थी कि चाहे किसी पूञ्जीपति का कितना ही नुकसान क्यों न हो यदि प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध हो गया कि वनस्पति घी एक हानिकारक पदार्थ है, तो नकली घी के सभी कारखाने बन्द कर दिये जायेंगे। इज्जत नगर (बरेली) की जीव-विज्ञान सम्बन्धी प्रयोगशाला (Animal Nutrition laboratory) में श्री के० डी० खेर व आर० चन्द्रा (K. D. Kher and R Chandra) ने सफेद चूहों पर इसका प्रयोग किया और कुछ समय पश्चात् जो परिणाम निकले उनकी घोषणा की गई। अनेक चूहों को नेत्र रोग हो गये।

अनेक त्वचा रोग से पीड़ित हो गये, बहुतों के सिर के बाल झड़ गये किसी को दस्त लग गये इत्यादि इस। रिपोर्ट पर सरकार ने क्या कदम उठाया यह किसी को आज तक मालूम नहीं हुआ। नकली घी के कारखाने आज भी पहले से अधिक संख्या में मौजूद हैं।

बंगलौर साइन्स कांग्रेस में सन् १९४६ में नकली घी पर एक गोष्ठी (Symposium) का आयोजन हुआ था, उसमें नकली घी के दोषों पर जो प्रकाश डाला गया उसका सारांश हम यहां देते हैं।

(१) निकल की राख जो तेल में मिलाई जाती है, वह छानने पर सौ-फी-सदी पृथक् नहीं होती। निकल की ये धूल शरीर के अन्दर पहुंचकर अनेक उत्पात पैदा करती है; क्योंकि मनुष्य के शरीर में निकल कहीं नहीं पाई जाती। मनुष्य के शरीर में तांबा, लोहा आदि धातुयें तो हैं किन्तु निकल नहीं है।

(२) उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि इसमें शरीर-वर्धक (Growth promoting) रसायन नहीं होती जिसके कारण बच्चे का विकास अच्छा नहीं होता।

(३) इसमें विटामिनों का अभाव है। जो विटामिन ऊपर से मिलाये जाते हैं वह प्राकृतिक विटामिनों का मुकाबला नहीं कर सकते।

(४) प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि वनस्पति घी के सेवन करने से अनेक प्रकार के रोग उत्पन्न होते हैं। जहां एक ओर गाय के घी के सेवन से नेत्रों की ज्योति बढ़ती है

वहां वनस्पति के सेवन से आंखों की ज्योति घटती है। वनस्पति के प्रयोग से अनेक तरह के चर्म रोग उत्पन्न होते हैं, इत्यादि।

(५) अनेक प्रकार की पुष्टिकारक औषधियों के साथ शुद्ध घी का सेवन करने से औषधिया शरीर मे घुलमिल जाती हैं, इसके विपरीत यदि वे ही औषधियां वनस्पति घी के साथ खाई जावें तो उल्टे दस्त लग जाते हैं।

(६) असली घी की खुशबू और जायका अत्यन्त मन-मोहक है, जबकि वनस्पति में न तो कोई खुशबू है और न जायका ही अच्छा है। वनस्पति में तला हुआ पदार्थ गर्म-गर्म खा लेने पर तो केवल गले को ही खराब करता है किन्तु कुछ देर रखा हुआ पूरी, पराँवठा तो बिलकुल ही खाने योग्य नही रहता।

प्रश्न यह उठता है कि शुद्ध वनस्पति तेल जब घी से भी अधिक पुष्टिकारक है तो तेल में निकल और हाइड्रोजन मिलाकर एक नया पदार्थ बनाने की क्या आवश्यकता थी? वनस्पति घी के सम्बन्ध में यह दावा बिलकुल झूंठा है कि इसमें बना हुआ भोजन अधिक स्वादिष्ट और पुष्टिकारक होता है। यदि यह बात सत्य होती तो छः रुपये किलो के वनस्पति घी को छोड़कर तेरह रुपये किलो के घी को खाने की कोई मूर्खता क्यों करता? वास्तव में वनस्पति घी के सस्तेपन और घी से मिलते-जुलते रंग के कारण गरीब आदमी को भी यह सन्तोष हो जाता है कि 'मैं' भी बड़े आदमी की तरह घी का सेवन कर रहा हूं। यही एकमात्र इसके प्रचार का कारण है।

हमारे नैतिक पतन के कारण आज वनस्पति घी भी अपने असली रूप में नहीं मिलता। उसमें भी अनेक प्रकार की मिलावटें की जा रही हैं। बड़े अफसोस की बात तो यह है कि ऐसे अपवित्र और हानिकारक पदार्थ का व्यवहार हमारे समाज में भी प्रचुर मात्रा में हो रहा है। हम विवाहादि के अवसर पर बीसियों हजार रुपया व्यय तो करते हैं परन्तु भोजन खिलाते हैं वनस्पति घी का। यह प्रचलन निन्दनीय है और यह बिल्कुल बन्द होना चाहिये। अगर हमारी सामर्थ्य अधिक धन व्यय करने की न हो तो दावत में आदमियों की संख्या कम कर देनी चाहिये, किन्तु भोजन तो शुद्ध घी का बना हुआ ही होना चाहिये, जैसा कि कुछ वर्षों पूर्व होता रहा है।

देहरादून के प्रसिद्ध रसायन शास्त्र के प्रोफेसर डा. के. डी. न जै(Dr. K. D. Jain) अपने लेख एनेलेसिस ऑफ वनस्पति घी प्रोबलम (Analysis of Vanaspati Ghee problem) में लिखते हैं कि वनस्पति घी के प्रयोग से अनेक प्रकार के चर्म रोग और विटामिनों के अभाव से उत्पन्न होने वाले रोग पैदा हो जाते हैं। यदि हम चाहते हैं कि हमारा राष्ट्र जिन्दा रहे और फले फूले तो वनस्पति घी का प्रयोग सरकार को कानून द्वारा तुरन्त बन्द कर देना चाहिये।

(Immediate Prohibition and ban on the consumption of hydrogenated oils or food is the greatest necessity for the nation to live and flourish)

केन्द्रीय स्वास्थ्य मन्त्री माननीय श्री डी. पी. करमरकर (D P. Karmarkar) ने ११ दिसम्बर १९५९ को लोक-सभा में कहा था कि "वनस्पति घी के मुकाबले में शुद्ध तेल कहीं अधिक स्वास्थ्यप्रद है और यदि सम्भव हो तो शुद्ध तेल का ही व्यवहार करना चाहिये।"

६. शक्कर (Sugar)

आज जो दानेदार सफेद शक्कर बाजारों में बिक रही है, यह कई कारणों से खाने के योग्य नहीं है। एक कारण तो यह है कि पहले बूरे के नाम से जो भूरी शक्कर बिकती थी वह विटामिनों से युक्त होती थी और शरीर को लगती थी। इसके लिये शक्कर शरीर में क्या काम करती है, इसको अधिक स्पष्ट समझ लेना जरूरी है।

कोई भी कार्बोहाइड्रेट (Carbohydrate) मुंह के थूक मिलने पर शक्कर में परिवर्तित हो जाता है और पेट में पहुंच कर पेंक्रियाज (Pancreas) नाम की ग्रन्थि से जो इन्सुलिन (Insulin) नामक रस निकलता है उसकी सहायता से ग्लाइकोजन (Glycogen) में परिवर्तित हो जाता है। ग्लाइ-कोजन का भण्डार जिगर (Liver) में रहता है और यह प्राणियों की शक्तियों का स्रोत है। जब मनुष्य कोई मेहनत का काम करता है तो आवश्यक शक्ति ग्लाइकोजन के जलने से उत्पन्न होती है। दूसरे शब्दों में यूं कह सकते हैं कि शक्कर वह ईंधन है जिसके जलने से शरीर को शक्ति प्राप्त होती है। जिस प्रकार कोयला जलकर पानी को भाप में बदलता

है और भाप से इञ्जन चलता है, उसी प्रकार हमारे शरीर रूपी इञ्जन को चलाने के लिये शक्कर अथवा ग्लाइकोजन की आवश्यकता होती है। जब किसी कारण से पेंक्रियाज़ ग्रन्थि निकम्मी हो जाती है और उसमें इन्सुलिन (Insulin) का बनना बन्द हो जाता है तो शक्कर से ग्लाइकोजन नहीं बनता और शक्कर कुछ तो पेशाब में मिलकर बाहर निकल जाती है और उसका कुछ भाग हमारे रक्त में प्रवेश कर जाता है। इस रोग को मधुमेह (Diabetes) कहते हैं। आज घर-घर में स्त्री-पुरुषों को—यहाँ तक कि बच्चों को भी मधुमेह का रोग हो रहा है, जिससे मनुष्य धीरे-धीरे काल की ओर अग्रसर होता जाता है। डाक्टर लोग इस रोग के होने के अनेक कारण बताते हैं जिनमें एक कारण है मन में चिन्ताओं का होना। पेंक्रियाज़ के निकम्मे हो जाने का क्या कारण है, यह कोई डाक्टर भी नहीं बतलाता।

कोई १५ वर्ष पहले की बात है वैज्ञानिक पत्रों में एक लेख प्रकाशित हुआ था 'सफेद शक्कर का खतरा' (Danger of white sugar) जिसमें इंग्लैण्ड (England) की संसद से यह मांग की गई थी कि ऐसा कानून बन जाना चाहिये कि शक्कर को इस सीमा तक साफ नहीं करना चाहिये कि उसमें सौ-फी-सदी कार्बोहाइड्रेट ही रह जाय अर्थात् कुदरती शक्कर में जो विटामिन 'ए' और सी' पाये जाते हैं उनको सम्पूर्ण रूप से विलग न किया जाय; क्योंकि सफेद शक्कर मधुमेह उत्पन्न करता है और देशी बूरा नहीं करता। इससे

स्पष्ट है कि देशी बूरे के मुकाबले में दानेदार शक्कर त्याज्य है।

अभी कई वर्षों पहले तक यह देखने में आता था कि शक्कर को पूर्ण रूप से सफेद करने के लिये अर्थात् उसकी सुर्खी को मिटाने के लिये हड्डी के कोयलों का व्यवहार किया जाता था। कहीं-कहीं अब भी यह पद्धति चल रही है, अतएव इस संसर्गज दोष के कारण भी यह शक्कर त्याज्य है। वर्तमान काल में अगर देशी बूरा दानेदार शक्कर के मुकाबले में इतना अधिक महगा न होता तो हमारे घरों से ऐसे गुण-वान पदार्थ का निष्कासन नहीं होता। जो लोग देशी बूरा इस्तेमाल करने में असमर्थ हैं, उन्हें चाहिये कि दानेदार शक्कर की चासनी बनाकर उसमें गुड़ मिला कर और उसको पुनः पीसकर व्यवहार में लाएं तो सफेद शक्कर का दोष मिट जायेगा।

दानामेथी का प्रयोग मधुमेह का सस्ता और अच्छा इलाज है। जिन भाई अथवा बहनों को यह रोग हो, उन्हें यह चाहिये कि ३ माशा मेथीदाना रात को पानी में भिगो दें और सुबह उसका निथरा हुआ पानी पीलें। कुछ दिन निरंतर सेवन करने से लाभ प्रतीत होगा। जिन भाइयों को अधिक शक्कर खाने की आदत हो उन्हें मिठाई के साथ-साथ दाना-मेथी का साग किसी रूप में प्रयोग करना चाहिये। मारवाड़ियों में यह आम प्रथा है कि उनके प्रत्येक दावत में दानामेथी का साग होता ही है। अतएव भरपेट मिठाई का प्रयोग करने पर भी उसका दुष्परिणाम देखने को नहीं मिलता।

७. पानी अथवा जल

लोक में यह कहावत प्रसिद्ध है 'जैसा खावे अन्न वैसा होवे मन। जैसा पीवे पानी वैसी बोले बानी।'

विज्ञान की दृष्टि में सबसे उत्तम जल उस कुयें का माना गया है जिसका पानी निरंतर खिचता रहता है। इसका मुख्य कारण यह है कि कुयें के जल को छानने की क्रिया प्रकृति करती है। जहाँ बड़े-बड़े वाटर वर्क्स (Water works) हैं वहाँ जाकर आप देखेंगे तो मालूम होगा कि जिस जल को पीने योग्य बनाया जाता है वह जल कई तालाबों में होकर आता है, जिन्हें सैटिलमैंट टैंक्स (Settlement Tanks) कहते हैं। इन टैंकों में एक में रेत भरी रहती है, एक में कंकड़ भरे रहते हैं, एक में कोयला भरा रहता है, इत्यादि। इन वस्तुओं में होकर जब पीने का पानी जाता है तो सारी अशुद्धियाँ वहीं छूट जाती हैं। यह विधि मनुष्य ने पानी को साफ करने की निकाली है। किन्तु कुयें की धरातल पर जो पानी आता है वह पृथ्वी के अन्दर ऐसी अनेक तहों में होकर आता है जहाँ किसी तह में कंकड़, किसी तह में रेत, किसी तह में चूना आदि अनेक पदार्थ पाये जाते हैं। यह क्रिया नितान्त प्राकृतिक है और यह हम अच्छी तरह से जानते हैं कि प्राकृतिक क्रियाओं की तुलना में हमारी समस्त कृत्रिम विधियाँ पोच (हलकी) हैं। अतएव प्रकृति द्वारा छना हुआ जल जो कुओं में मिलता है उसका मुकाबला वाटर वर्क्स (Water works) का पानी नहीं कर सकता। हाँ, यह आव-

श्यक है कि जिस नये कुएें का जल पीना प्रारम्भ किया जाय उसके जल को सेनिटरी इन्जिनियर (Sanitary Engineer) से परीक्षा करवा लेना चाहिये कि उसमें कोई हानिकारक लवण (Salts अथवा बीमारियों के सूक्ष्म कीटाणु (Bacteria) तो नहीं पाए जाते।

यद्यपि आजकल वाटर वर्क्स (Water works में जिन विधियों से जल को स्वच्छ किया जाता है वह बहुत ही उच्च-कोटि की हैं और घर पर इतनी स्वच्छता लाना अशक्य ही है। बीमारी के कीटाणुओं को नाश करने के लिये उसमें फिटकरी और क्लोरीन (Chlorine) का पानी मिलाते हैं, फिर भी पानी को लाने वाले नल जिन गन्दे से गन्दे स्थानों में होकर आते हैं उसके कारण और चमड़े के वाशर (Washer) के संसर्ग के कारण वह पानी त्यागी वृत्तियों के लिये पीने के योग्य नहीं कहा जा सकता। जिन व्यक्तियों ने नल के पानी का त्याग कर रखा है उनको सबसे बड़ा एक लाभ यह होता है कि वे महा अपवित्र और दूषित बाजार में बिकने वाले सभी पदार्थों से उनका पिण्ड छूट जाता है, अर्थात् इन पदार्थों को खाकर जो शारीरिक हानि उनको उठानी पड़ती थी उससे वे सहज ही बच जाते हैं। इसलिये जहां स्वास्थ्यकर कुएँ का ताजा पानी उपलब्ध हो वहां हमें उसके मुकाबले में नल के पानी को श्रेष्ठता (Preference) नहीं देना चाहिये।

हैंडपम्प का पानी भी कुएें के जल के समान ही है, किन्तु उसमें भी चमड़े का वाशर लगा रहता है। कहीं-कहीं

शोधी लोग इसमें किरमिच का वाशर लगवा लेते हैं तब यह दोष मिट जाता है लेकिन यह वाशर ज्यादा दिन नही टिकता।

८. अंग्रेजी औषधियों का प्रयोग

हमारे व्यवहार में अंग्रेजी औषधियों का प्रयोग दिन प्रतिदिन बढ़ता ही जा रहा है, इसका कारण है उन औषधियों का चमत्कारिक और तात्कालिक फल। कुछ लोगों का यह विचार है कि तरल दवाइयों में शराब मिली रहने के कारण उन्हें नहीं लेना चाहिये और सूखी दवाई लेने में कोई हर्ज नहीं है। यह विचार नितान्त सत्य नही है और इन्जेक्शन के सम्बन्ध में तो हमारे पंडितों ने अभी तक कोई निर्णय दिया ही नही है। हमें यह निर्णय कर देना चाहिये कि वह दवाइयां जैसे लिवर एक्सट्रैक्ट (Liver extract) या इन्सुलिन (Insulin) जो सीधे मांस से तैयार की गई हैं उनका इन्जेक्शन लगवाना मास भक्षण की श्रेणी में आता है या नहीं। इसके अतिरिक्त अब सूखी दवाइयां भी जिलेटिन के कैपसूल में बन्द होकर आती हैं। जिलेटिन एक महाअपवित्र, मांसीय पदार्थ है। अतएव हमारी राय मे जिसने मांस भक्षण का सर्वथा त्याग कर दिया है उन्हें अंग्रेजी दवाइयां और इन्जेक्शन नही लगवाने चाहिये जब तक कि अच्छी तरह से यह न ज्ञात हो जाये कि ये मांस जैसे पदार्थों से तैयार नही की गई हैं। उन्हें शुद्ध आयुर्वेदिक, यूनानी अथवा होम्योपैथिक औषधियों का ही प्रयोग करना चाहिये।

९. पेय पदार्थ

आजकल जो पेय पदार्थ (Cold drinks) बाजारों में बिकते हैं, इनमें शक्कर के स्थान पर सैक्रीन का प्रयोग किया जाता है, सैक्रीन हाजमे को बिलकुल खराब कर देती है। लैमोनेड इत्यादि पदार्थ पीये तो जाते हैं हाजमे को ठीक करने के लिये, लेकिन वो उल्टा उसको खराब कर देते हैं। कुछ ठंडे पेय पदार्थों में अब एलकोहल की मात्रा भी मिलाई जाने लगी है, एलकोहल को मद्यसार कहते हैं, एतएव इन पदार्थों से जहां तक बचा जाय उतना ही अच्छा है।

१०. मांसाहार और अण्डे

मनुष्य के दांतों की बनावट को देखकर जीव वैज्ञानिकों (Biologists) ने स्पष्ट घोषणा करदी है कि मांस मनुष्य का प्राकृतिक भोजन नही है। मनुष्य ने अपनी जिह्वा लोलुपना के कारण मांसाहार करना सीख लिया है और अप्राकृतिक होने के कारण यह हमारे शरीर में और हमारे विचारों में अनेक प्रकार के दोष उत्पन्न करता है। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने भी मांसाहार के सम्बन्ध में यही विचार प्रकट किये हैं। अतएव यह निर्विवाद ही है कि सुखी जीवन के लिये और अच्छे स्वास्थ्य के लिये मनुष्य को निरामिष भोजन होना चाहिये।

अण्डों के सम्बन्ध में योरोपीय देशों में और अमरीका में यही धारणा थी कि अण्डे शाकाहार का ही एक अंग हैं क्योंकि इनको प्राप्त करने में न तो मुर्गी को कोई कष्ट होता

है और न इन अण्डों में सेये जाने पर बच्चे उत्पन्न करने की क्षमता होती है। आधुनिक समय में अण्डों के सम्बन्ध में योरुप व अमरीका में जो नई खोज हुई हैं, उनका विवरण पढ़कर आपको प्रतीत होगा कि अण्डे विष से भरे हैं और त्यागने योग्य हैं। कृषि विभाग-फ्लोरिडा (अमरीका) हैल्थ बुलेटिन-अक्तूबर १९६७ में छपा है कि १८ महीनों के वैज्ञानिक परीक्षण के बाद ३० प्रतिशत अण्डों में डी० डी० टी० नाम का विष पाया गया। डा० कैथराइन निम्मी, डी० सी० आर० एन० कैलीफोर्निया (यू० एस० ए०) अपनी खोजों के आधार पर लिखती हैं कि अण्डों के सेवन से निम्न रोग शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं :—

(१) दिल की बीमारी, (२) हाई ब्लड-प्रेशर (रक्तचाप का बढ़ना), (३) गुर्दों की बीमारी, (४) पित्ताषय में पथरी (Stones in gall bladder) बढ़िया से बढ़िया अण्डों की जर्दी में भी कोलइस्टिरौल (Cholesterol) की मात्रा अत्यधिक होने के कारण उपरोक्त रोग उत्पन्न होते हैं। फलों, सब्जियों और वनस्पति तेलों में कोलइस्टिरौल बिलकुल नहीं होता। उपरोक्त रोगों के अतिरिक्त धमनियों में जख्म, एग्जिमा (Eczema), लकवा (पक्षाघात) पेचिश, अम्लपित्त (Acidity) और बड़ी आंतों में सड़ांध पैदा करते हैं जिससे मनुष्य का हाजमा खराब हो जाता है।

—डा० जे० ई० आर० मैक्डोनाल्ड एफ० आर० एस० (इङ्गलेंड) अपनी पुस्तक दी नेचर ऑफ डिजीज़-वौल्यूम-I पृष्ठ १९४

११. मद्य और धूम्रपान

डाक्टरों के मतानुसार संसार में जितने नशीले पदार्थ हैं, स्वास्थ्य के लिये उनमें मद्य सबसे अधिक हानिकारक है। यह जानते हुये भी संसार में मद्यपान करने वालों की संख्या करोड़ों पर है, अनुमान लगाया गया है कि अकेले अमरीका में प्रतिवर्ष लगभग छ. अरब रुपये की शराब व्यय होती है और इसके पीछे सैकड़ों सुखी परिवार मिट्टी में मिल जाते हैं। निरन्तर शराब पीने से शरीर के लगभग सभी अवयव निकम्मे हो जाते हैं। मद्यपान से जठराग्नि मन्द पड़ जाती है। भूख कम लगने लगती है। परिणाम यह होता है कि विटामिन और प्रोटीन जैसे पोषक तत्वों की शरीर में भारी कमी हो जाती है। कभी-कभी फेफड़ों पर सूजन आ जाती है, हाथ पैर कांपने लगते हैं, जीभ लड़खड़ाने लगती है और अनेक मनुष्य विक्षिप्त हो जाते हैं। देखो साइन्स टुडे मार्च १९७१ (Science Today March 1971).

धूम्रपान के सम्बन्ध में विशेषकर सिगरट पीने के सम्बन्ध में डाक्टरों के अभिमत निरन्तर प्रकाशित होते रहते हैं। प्रयोगों द्वारा सिद्ध हुआ है कि प्रत्येक १२ मनुष्यों में, जिनके फेफड़ों में कैंसर का रोग हुआ है, ११ व्यक्ति अत्यधिक सिगरट पीने वाले थे और १ बिना सिगरट पीने वाला। रसायनिक विश्लेषण से सिगरट के धूयें में ५०० भिन्न-भिन्न प्रकार के विष पाये गये हैं। सिगरट का जो धूआं फेफड़ों में जाता है और उसमें जो निकोटीन नामक विष होता है,

उसे फेफड़े पूरी तरह सोख लेते हैं। अतएव तम्बाकू एक सर्वथा त्यागने योग्य पदार्थ है। यदि किसी केस में मैडिकल कारणों से तम्बाकू का प्रयोग अत्यन्त आवश्यक समझा जावे तो उस व्यक्ति को हुक्का पीना चाहिये। हुक्के के पानी में धुयें के अधिकांश जहर घुल जाते हैं।

१२. उपवास

जैनागम में जो १२ प्रकार का तप बताया गया है, अनशन अथवा उपवास उनमें से एक है। जिस दिन मनुष्य उपवास करता है उस दिन उसे खाना बनाने और खाने से मुक्ति मिल जाती है और अपने उस समय को वह ईश-आराधना शास्त्र-स्वाध्याय अथवा परोपकारादि में व्यय कर सकता है। इन कृत्यों से पुण्य का बंध होता है और पुण्यबंध से स्वर्गों की प्राप्ति। शास्त्रों मे जो भिन्न-भिन्न प्रकार के व्रत बतलाये हैं और उनके करने से परलोक में जो फल मिलता है उस पर हम कुछ अधिक नहीं कहना चाहते। हम तो आपको केवल यह समझाना चाहते हैं कि व्रत करने से किस प्रकार शरीर को निरोग रखा जा सकता है और आयुष्य को बढ़ाया जा सकता है। धर्म साधन के लिये निरोगी काया परमावश्यक है। अतएव व्रतों का पालना धर्म साधन का एक अभिन्न अंग बन गया है।

इङ्गलैण्ड में एक संस्था है जिसे रॉयल सोसायटी ऑफ लंदन (Royal Society of London) कहते हैं। यह समूचे संसार में विज्ञान की सर्वोच्च प्रामाणिक सोसायटी है।

इस संस्था की सदस्यता अत्यन्त दुर्लभ है। भारतवर्ष में अब तक केवल ५–६ व्यक्ति ही इस सदस्यता के योग्य समझे गये हैं। उनके नाम हैं—श्री रामानुजम्, सर जगदीशचन्द्र वसु, सर सी० वी० रमण, डा० मेघनाद सहा, डा० बीरबल साहानी और प्रो० भाभा। रॉयल सोसायटी के सामने बोलते हुए अभी थोड़े दिन हुए, जीव विज्ञान के एक प्रोफेसर ने कहा था 'हम इसलिये मरते हैं कि हम खाते हैं और दिन में कई बार खाते हैं। यह बात भी सत्य है कि भूख और अकाल से मरने वालों की संख्या उन मरने वालों की अपेक्षा कहीं कम है, जो रात-दिन अनाप शनाप खा-खाकर अपने शरीर को रोगी बना लेते हैं और परिणामस्वरूप काल-कवलित हो जाते हैं।' इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहां भोजन ही एक ओर शरीर का आधार है वहां दूसरी ओर शरीर के रोगी बनने का कारण भी है। अगर बिना खाये शरीर को चलाना सम्भव होता तो हम सदा निरोग रहते और हमारी आयुष्य बढ़ जाती किन्तु यह तो सम्भव नहीं है अतएव अल्प भोजन करने से भी शरीर में जो दोष उत्पन्न हो जाते हैं उनको शमन करने का कोई उपाय ढूंढना चाहिये और वह उपाय है 'अनशन'।

'गोम्मटसार' में वर्णन आता है कि जिस देव की आयु १ सागर होती है वह १ पक्ष में एक श्वास लेता है, महीने में २ और वर्षभर में २४ और जब १००० वर्ष में २४,००० श्वांस पूरे कर लेता है तब उसे भूख लगती है। यह भी उल्लेख है कि यदि मनुष्य देवताओं का सा जीवन बिता-

कर सुखी रहना चाहता है तो उसे २४००० श्वांस लेने के बाद ही भूख लगने पर भोजन करना चाहिये। हम एक मिनट में १८ बार श्वांस लेते हैं तो एक घण्टे में (६०×१८) १०८० श्वांस हुये। मोटे रूप से इसे हम १००० के ही लगभग मानें तो २४ घण्टे में कुल श्वांसों की गिनती २४००० हुई। दूसरे शब्दों में यदि हम देवताओं के तुल्य स्वस्थ और दीर्घायु होना चाहते हैं तो हमें २४ घण्टे में केवल एक ही बार भोजन करना चाहिये, क्योंकि २४ घण्टे में ही हमारे २४००० श्वांस पूरे होते हैं।

मनुष्य क्यों मरता है ? उसका एक उत्तर यह है कि प्राणिमात्र के रक्त में एक रासायनिक पदार्थ मिला हुआ होता है जिसे शास्त्रकारों ने 'अमृत' के नाम से पुकारा है और कर्मानुसार भिन्न-भिन्न प्राणियों में इसकी मात्रा न्यूनाधिक होती है। रेडियो Valve के अन्दर फिलामेंट (Filament) के ऊपर चूने का एक लेप चढ़ा रहता है (A coat of Calcium and Strontium Oxides) जैसे-जैसे हम रेडियो को व्यवहार में लाते हैं, लेप की मोटाई कम होती जाती है और एक दिन जब लेप सम्पूर्णतया समाप्त हो जाता है तब रेडियो प्राणहीन हो जाता है अर्थात् बोलना बन्द कर देता है। इसी प्रकार जीवन की क्रियाओं में रक्त मिश्रित अमृत एक ओर तो शनैः शनैः व्यय होता रहता है और दूसरी ओर हमारे भोजन में मिले हुए टोक्सिन्स (Toxins) के द्वारा विषाक्त होता जाता है और जब यह अमृत पूर्णतया समाप्त हो जाता है या विष मिश्रित हो जाता है तो मनुष्य की मृत्यु

हो जाती है। कितने दिन में वो पूर्णरूप से व्यय हो जायगा अथवा विषाक्त हो जायगा वह निम्नोक्त बातों पर निर्भर करता है—

(१) अमृत की मात्रा (Quantity of Nectar)

(२) खर्च करने की दर (Rate of consumption)

(३) विषाक्त होने की दर (Rate of poisoning)

अब हम इन शब्दों की विशेष व्याख्या करते हैं :—

अमृत की मात्रा और खर्च करने की दर

किसी के पास हजार रुपये हैं और किसी के पास केवल एक। साधारण बुद्धि तो यही कहती है कि एक के मुकाबले में हजार रुपये ज्यादा दिन चलेंगे, मगर यह कोई जरूरी नहीं है। ऐसा भी सम्भव है कि हजार रुपये वाला व्यक्ति अपने हजार रुपये एक ही दिन में खर्च करदे और एक रुपये वाला व्यक्ति केवल एक नया पैसा ही रोज खर्च करे तो उसका एक रुपया १०० दिन चल जायेगा। जो अपने हजार रुपये एक ही दिन में खर्च कर देता है वह असंयमी है और एक नया पैसा खर्च करने वाला संयमवान। कहने का अभिप्राय यह है कि यदि आप संयम का जीवन व्यतीत करेंगे तो आपका अमृत स्टोर थोड़ा होने पर भी ज्यादा दिन चल जायेगा। दूसरे शब्दों में व्रत संयम का जीवन व्यतीत करने से आप पूर्णायु के भोक्ता होंगे क्योंकि अमृत के खर्च की दर कम हो जायगी।

विषाक्त होने की दर (Rate of poisoning)

हम जो भोजन करते हैं उसका कुछ अंश शरीर का

पोषण करते हैं और उसके कुछ अंश रक्त के अन्दर टोक्सिन्स (toxins) छोड़ते हैं जो भोजन निषिद्ध बनाये गये हैं उनमें टोक्सिन्स (toxins) अधिक होते हैं और जिन खाद्य पदार्थों को भोजन के योग्य बनाया गया है उनमें टोक्सिन (toxin) हलके प्रकार का और कम होता है लेकिन सभी प्रकार के भोजन से ऐसे रासायनिक पदार्थ निकलते हैं जिनसे हमारा रक्त दूषित होता है। हम २४ घण्टे में जितने अधिक बार भोजन करेंगे उतनी ही बार हम अपने अमृत में विष घोल रहे हैं अर्थात अमृत के विषाक्त होने की दर बढ़ जायगी और हम अपने मृत्यु के दिन को और अधिक निकट बुलाते चले जायेंगे। भोजन जितना ही कम बार किया जायेगा उतनी ही अमृत के विषाक्त होने की दर धीमी पड़ जायगी। अनशन वाले दिन अमृत में विष का मिलना न केवल बन्द ही रहेगा अपितु दोषों का किञ्चित् शमन भी होगा। इस प्रकार 'अनशन' हमें पूर्ण आयुष्य को भोगने में सहायता करता है।

आयुष्य के सम्बन्ध में एक और भी तुलना लोगों ने दी है जो बुद्धिगम्य है। जिस प्रकार दीवार से लटकने वाली घड़ी को न्यूनाधिक चाबी देकर उसके पेंडुलम को हिलती हुई अवस्था में रखा जा सकता है। अगर चाबी कम भरी जायगी तो पेंडुलम थोड़े दिनों तक चलेगा और चाबी पूरी भर दी जायगी तो पेंडुलम अधिक दिनों तक चलेगा। इस मान्यता के अनुसार हम पैदा होने से पहले दिल के अन्दर एक चाबी भरवाकर आते हैं और जब वह चाबी खत्म हो जाती है तो दिल की धड़कन बन्द हो जाती है। कभी-कभी

ऐसा भी होता है कि चाबी पूरी खत्म नहीं हुई है और फिर भी मशीनरी में किसी धूल आदि के कण आ जाने के कारण लटकन का हिलना बन्द हो जाता है। ऐसी दशा में बिना चाबी भरे ही लटकन को हिला देने से वह फिर चलने लगता है और पूरी चाबी खत्म होने पर ही फिर बन्द होता है। आजकल रूसी डाक्टरों ने जिन व्यक्तियों को मरा समझकर छोड़ दिया था उन्हें पुनर्जीवित किया है। वे ऐसे ही केस थे जिनकी पूरी चाबी खत्म नहीं हुई थी। इसे अकाल मृत्यु भी कहते हैं। अकाल मृत्यु में अमृत का घड़ा पूर्णरूप से रीता नहीं होता वरन् किसी ठोकर लग जाने के कारण असमय में ही फूटकर रीता हो जाता है। इससे भी यह निष्कर्ष निकलता है कि हमें अपने अमृत के घड़े को सयम द्वारा बड़े सभाल के रखना चाहिये ताकि हम उसका पूरे समय लाभ उठा सकें। अनशन सयम का एक मुख्य अंग है।

११. स्वर्ग और नरक

जैन शास्त्रों में स्वर्ग और नरक का बड़ा विषद और अद्भुत वर्णन पाया जाता है। अतएव पढ़े लिखों के मन में यह सन्देह होना स्वाभाविक ही है कि क्या वास्तव में इस धरा पर, इसके भीतर अथवा इससे बाहर ऐसे स्थानों का होना सम्भव है।

बौद्ध-जातक में एक इस प्रकार की कथा आती है कि एक बार भिक्षुओं ने महात्मा गौतम बुद्ध से पूछा कि हे भगवन स्वर्ग और नरक नाम के जो स्थान हैं, उनका समुचित विवेचन करो। महात्मा बुद्ध ने तुरन्त पूछा कि यह प्रश्न तुम्हारे मन में कैसे उत्पन्न हुआ। भिक्षुओं ने उत्तर दिया कि श्रवण महावीर ऐसा उपदेश दे रहे हैं। महात्मा बुद्ध ने पुनः कहा कि मैं तुम से एक प्रश्न पूछता हूं कि क्या तुम्हें इसमें सन्देह है कि सत्कर्मों का फल अच्छा और दुश्कर्मों का फल बुरा होता है? सबने तुरन्त उत्तर दिया, महाप्रभो! हमें इसमें कोई संदेह नहीं है। महात्मा बुद्ध तुरन्त बोले, तो जाओ यदि कहीं स्वर्ग होगा और अच्छे कर्म करने से स्वर्ग मिलता है, तो तुम्हें भी मिल जायगा। तुम इस चिन्ता में मत पड़ो कि कहीं स्वर्ग है या नहीं। इसी प्रकार नरक के बारे में भी समझो।

इस विज्ञान के युग में यह जिज्ञासा और भी अधिक बढ़ गई है और साइंस ने इस विषय में जो बातें ज्ञात की हैं, उसका कुछ विवरण निम्न पंक्तियों में दिया जाता है—

पृथ्वी के चारों ओर जो वायुमण्डल है उसकी ऊँचाई २०० मील अनुमान की जाती है। उसको चार खण्डों में विभाजित किया गया है, जिनके नाम हैं :—

(१) ट्रोपोस्फियर (Troposphere)

(२) स्ट्रैटोस्फियर (Stratosphere),

(३) ओजोनोस्फियर (Ozonosphere) और

(४) आयनोस्फियर (Ionosphere).

प्रत्येक स्तर की कुछ विशेषतायें हैं। प्रथम स्तर की ऊँचाई लगभग ८ मील है। इसी स्तर के अन्तर्गत बादल उत्पन्न होते हैं और इसी स्तर के अन्तर्गत जो परिवर्तन होते हैं उनका हमारे मौसम पर प्रभाव पड़ता है। भूमध्य रेखा के ऊपर लगभग ११ मील की ऊँचाई तक और ध्रुवों के ऊपर लगभग ४ मील की ऊँचाई तक ताप (Temperature) निरन्तर कम होता जाता है और जहाँ प्रथम स्तर की सीमा का अन्त होता है और द्वितीय स्तर प्रारम्भ होता है, वहाँ का ताप शून्यसे ५५ डिग्री सेन्टीग्रेड कम (–55°C) है। इस शीत का अनुमान केवल इस बातसे लगाया जा सकता है कि पानीका तो कहना ही क्या, पारा भी इस सरदी में जम कर ठोस पत्थर हो जाता है। प्रकृति की इस विलक्षणता पर आश्चर्य होता है। कहाँ तो पृथ्वी के गर्भ में लोहे को भी गला देने वाली हजारों डिग्री सेन्टीग्रेड की उष्णता और कहां ठीक उसी के ऊपर धरातल से ११ मील की ऊँचाई पर पारे को भी जमा देने वाली भयंकर सर्दी। इन पंक्तियों को पढ़कर स्वर्गीय

पं० दौलतराम जी की छहढाला की निम्न पंक्तियाँ याद आ जाती हैं। नरकों की सर्दी गर्मी का वर्णन करते हुये उन्होंने लिखा है : "मेरु समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत उष्णता थाय।" अर्थात् नरकों में इतनी गर्मी और ठण्ड है कि मेरु पर्वत के साइज का लोह पिण्ड उन तापक्रमों पर गल जाता है अथवा बिखर जाता है (यह एक वैज्ञानिक सत्य है कि अत्यधिक ठण्ड पाने पर लोहा काँच के समान कुरमुरा हो जाता है। हाथ से गिरा कि चकनाचूर।)

प्रथम स्तर से द्वितीय स्तर में प्रवेश करते ही ताप का गिरना बन्द हो जाता है और लगभग २३ मील की ऊँचाई तक ताप मे कोई परिवर्तन नहीं पाया जाता। यह व्योम का वैकुण्ठ स्थान है, न तूफान, न आँधी, न बादल, न पानी, न धूल, न मिट्टी। इसी का नाम स्ट्रैटोस्फियर है। इसके अनन्तर ताप शनै शनै बढ़ता जाता है और जिस भाग को स्ट्रैटो-स्फियर कहते हैं, वहाँ १२ महीने बसन्त ऋतु रहती है। उसके पश्चात् २३ और ३७ मील के बीच मे ओजोनोस्फियर नाम का तीसरा खण्ड आता है। इस खण्ड मे तापमान १००० डिग्री सेन्टीग्रेड है और इसमे ओजोन नाम की दुर्गन्धपूर्ण गैस भरी हुई है-इतनी दुर्गन्धपूर्ण कि जिसमे न कोई मनुष्य सांस ले सकता है और न उसके पास खड़ा ही रह सकता है। नरकों के वर्णन में दौलतराम जी की ये पंक्तियां फिर याद करिये—तहाँ राध शोणित वाहिनी, कृमि कुलकलित देह-दाहिनी।" नरकों की जो तीन विशेषता बताई गई हैं— (१) घोर अन्धकार, (२) महा दुर्गन्ध, (३) महान उष्णता।

ये तीनों ही बातें ओजोनोस्फियर में पूरी उतरती हैं। नरक की मिट्टी के सम्बन्ध में शास्त्रों का उल्लेख है कि यदि यह मिट्टी मध्य लोक में लाई जावे, तो उसकी दुर्गन्ध से आधे कोस की दूरी तक के जीव मर जायें। ओजोन गैस की दुर्गन्ध से भी छोटे मोटे जीव मर जाते हैं।

पचास मील की ऊँचाई के पश्चात् आयनोस्फियर नामक चतुर्थ स्तर का प्रारम्भ होता है। इसी स्तर से टकराकर रेडियो की विद्युत लहरें एक देश से दूर देशों में जा उतरती हैं। जिस प्रकार शास्त्रों में वर्णित नरकों में भिन्न-भिन्न गहराइयों में नारकियों के बिल बने हुये हैं, उसी प्रकार यह आयनोस्फियर भी अनेक वलयों (Layers) में बटा हुआ है जिन्हें D,E,F इत्यादि वलय नाम दिये गये हैं। इसके ऊपर केनेली हीवसाइड (Kenelly-Heaveside) और एपल्टन (Appleton) नाम की तह हैं। एपल्टन तह की ऊँचाई लगभग २५० मील है। यहाँ की वायु का विघटन (Ionisation) हो चुका है। इस वायु से सांस नहीं लिया जा सकता और आगे चलकर लगभग १००० मील की ऊँचाई पर वान-एलन (Van-Allen) पट्टी (Belt) है, जहाँ की गर्मी से परमाणुओं का हलवा (Plasma) बन गया है। यहाँ भी जीवन सम्भव नहीं है। इस पट्टी में यदि भूल से कोई हवाई जहाज फँस जाय, तो वह वहीं चक्कर काटता रहेगा। एक प्रकार से वह भंवर में फँस जाता है।

अपोलो ११ व १२ जो चाँद की यात्रा को गये थे उन्हें लौटते समय किसी स्थान पर कुछ ऐसी

आवाजें सुनाई दी, जो क्रन्दनपूर्ण थीं। अभी तक वैज्ञानिक इस बात का पता नही लगा सके हैं कि ये आवाजें कहाँ से आ रही थी और इनका उद्गम क्या था।

हमने इस लेख में यह दिखलाने की चेष्टा की है कि आधुनिक विज्ञान ने हमारे वायु मण्डल के भीतर मुख्यतः दो प्रकार के स्थानों का पता चलाया है। एक तो वह जहाँ सर्वदा बसन्त ऋतु छाई रहती है—जहाँ न धूल है, न आंधी, न बरसात। यह ऐसा स्थान है जिसके सम्बन्ध में वैज्ञानिकों का अभिमत है कि नव-विवाहित दम्पतियों के लिये हनीमून (Honeymoon) मनाने का यह सर्वश्रेष्ठ स्थान है। वायु-मण्डल के दूसरे स्थान वे हैं जहाँ या तो अत्यधिक शीत है—इतना शीत कि वहाँ पारा भी जम जाता है, या वे स्थान हैं जहाँ अत्यधिक गर्मी है, घोर अन्धकार है और महादुर्गन्ध। इन स्थानों को यदि आप चाहें तो स्वर्ग और नरक की संज्ञा दे सकते हैं। इन क्षेत्रों में जीवात्मा रहती हैं अथवा नहीं, यह जानने का विज्ञानवादियों के पास कोई साधन नहीं है।

अर्ल उबैल (Earl Ubell) ने Readers Digest मई १९६६ में पृष्ठ १३५ पर लिखा है कि कैम्ब्रिज रेडियो वेधशाला में हमने उन लोकों से आती हुई रहस्यमयी आवाजें सुनी हैं जिन्हें हम देख नही सकते।

('At Cambridge a radio antenna has picked up the burble and squeak of worlds we can not see")

१२. जगत्-उत्पत्ति

हिन्दुओं के संकल्प मन्त्र के अनुसार इस पृथ्वी का जन्म आज से १ अरब ६७ करोड़ २६ लाख ४६ हजार ७२ वर्ष पूर्व हुआ। (ओ३म तत्सत् ब्रह्मणे द्वितीये परार्द्धे, श्री श्वेत वाराह कल्पे, वैवस्वत् मन्वन्तरे, अष्टा-विंशति तमे युगे, कलि-युगे कलि प्रथम चरणे इत्यादि।) कुछ समय पूर्व साइन्स की भी यही धारणा थी कि पृथ्वी का जन्म लगभग दो अरब वर्ष पूर्व हुआ किन्तु अब यह मान्यता बदल गई है। एक मान्यता ऐसी है कि पृथ्वी के प्रशान्त महासागर से चन्द्रमा का जन्म हुआ। अमृत मथन की कथा में इसी बात का संकेत मिलता है। जब चन्द्रमा पृथ्वी से पृथक हुआ तो उसकी गति भिन्न थी और यह गति अब घट गई है और जिस रेट से यह घट रही है उसका हिसाब लगाने से सृष्टि की आयु ४ अरब ६० करोड़ वर्ष निश्चित होती है। सृष्टि की आयु से अभिप्राय यह है कि आज जिस रूप में हम सृष्टि को देख रहे हैं, वह रूप ४॥ अरब वर्ष पुराना है।

सृष्टि की उत्पत्ति किस प्रकार हुई, विज्ञान के क्षेत्र में इस सम्बन्ध में चार सिद्धान्त हैं— (१) महान आकस्मिक विस्फोट का सिद्धान्त (Big Bang theory) (२) सतत् उत्पत्ति का सिद्धान्त (Continuous creation theory), (३) भँवर सिद्धान्त Whirlpool theory) व (४) महान रश्मि सिद्धान्त (Giant Photon theory). जायण्ट फोटोन सिद्धान्त के अनुसार प्रारम्भ में सृष्टि एक बहुत

बड़े और भारी प्रकाश पुंज के रूप में थी। जिसका वजन ६,००,००,००,०० ००,००,००,००,००० टन था। इस प्रकाश पुंज में से छिटक-छिटक कर सूर्य नक्षत्र और निहारिकाओं का जन्म हुआ। इन चारों सिद्धान्तों में महान आकस्मिक विस्फोट का सिद्धान्त और सतत् उत्पत्ति का सिद्धान्त प्रमुख हैं। महान आकस्मिक विस्फोट का सिद्धान्त जिसे सन् १९२२ में रूसी वैज्ञानिक डा० फ्रैडमैन ने जन्म दिया, हिन्दुओं की कल्पना से मेल खाता है। जिसके अनुसार ब्रह्माण्ड का जन्म हिरण्य गर्भ से हुआ (सोने का अण्डा) सोना धातुओं में सबसे भारी है। दूसरे शब्दों में यह कहा जा सकता है कि जिस पदार्थ से विश्व की रचना हुई वह बहुत भारी था। उसका घनत्व सबसे अधिक था। बढ़ते- बढ़ते यही अण्डा विश्वरूप हो गया।

विज्ञानाचार्य श्री चन्द्रशेखर जी आजकल अमेरिका में रहते हैं। उन्होंने गणित के आधार पर बतलाया है कि विश्व रचना के प्रारम्भ में पदार्थ का घनत्व लगभग १९० टन= ४४८० मन) प्रति घन इंच था। जबकि एक घन इंच सोने का तोल केवल ५ छटांक होता है। दूसरे शब्दों में वह पदार्थ अत्यन्त भारी था।

आजकल के वैज्ञानिक इस प्रश्न पर दो समुदायों में बटे हुए हैं। एक वह जिनका मत है कि यह ब्रह्माण्ड अनादिकाल से अपरिवर्तित रूप में चला आ रहा है और दूसरा वह जो यह विश्वास करते हैं कि आज से अनुमानतः १० या २० अरब वर्ष पूर्व एक महान आकस्मिक विस्फोट के द्वारा इस

विश्व का जन्म हुआ। हाइड्रोजन गैस का एक बहुत बड़ा धधकता हुआ बबूला अकस्मात् फट गया और उसका सारा पदार्थ चारों दिशाओं में दूर-दूर तक छिटक पड़ा और आज भी वह पदार्थ हम से दूर जाता हुआ दिखाई दे रहा है। ब्रह्माण्ड की सीमा पर जो क्वसर (Quasar) नाम के तारक पिण्डों की खोज हुई है जो सूर्य से भी १० करोड़ गुणा अधिक चमकीले हैं, हम से इतनी तेजी से दूर भाग जा रहे हैं कि इनसे आकस्मिक विस्फोट के सिद्धान्त की पुष्टि होती है। (गति ७०,००० से १५०,००० मील प्रति सेकिंड) किन्तु भागने की यह क्रिया एक दिन समाप्त हो जायगी और यह सारा पदार्थ पुनः पीछे की ओर गिरकर एक स्थान पर एकत्रित हो जायगा और विस्फोट की पुनरावृत्ति होगी। इस सम्पूर्ण क्रिया में ८० अरब वर्ष लगेंगे और इस प्रकार के विस्फोट अनन्त काल तक होते रहेंगे। जैन धर्म की भाषा में इसे परिणमन की संज्ञा दी गई है। इसमें षट्गुणी हानि वृद्धि (Sinusoidal variation) होती रहती है।

दूसरा प्रमुख सिद्धान्त सतत् उत्पत्ति का सिद्धान्त है जिसे अपरिवर्तनशील अवस्था का सिद्धान्त (Theory of steady state) भी कहा जाता है। इसके अनुसार यह ब्रह्माण्ड एक घास के खेत के समान है जहाँ पुराने घास के तिनके मरते रहते हैं और उनके स्थान पर नये तिनके जन्म लेते रहते हैं। परिणाम यह होता है कि घास के खेत की आकृति सदा एक-सी बनी रहती है यह सिद्धान्त जैन धर्म के सिद्धान्त से अधिक मेल खाता है, जिसके अनुसार इस जगत का न तो

कोई निर्माण करने वाला है और न किसी काल विशेष में इसका जन्म हुआ। यह अनादिकाल से ऐसा ही चला आ रहा है और अनादिकाल तक ऐसा ही चलता रहेगा। हमारी मान्यता गीता की उस मान्यता के अनुकूल है जिसमें कहा गया है "न कर्तृत्वं न कर्माणि, न लोकस्य सृजति प्रभु।" अर्थात् परमात्मा ने न इस लोक की रचना की है और न वह इसका कर्ता-धर्ता है।

ऊपर जिन दो सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है, वे दोनों ही सम्पूर्ण रूप से प्रयोग की कसौटी पर पूरे नहीं उतरते। इस सम्बन्ध में हम नीचे दो वैज्ञानिकों के अभिमत उद्धृत करते हैं। अर्ल उबेल (Earl Ubell) अपने एक लेख में लिखते हैं कि कोई भी ज्योतिषी इस बात पर विश्वास नहीं करता कि जगत उत्पत्ति के सम्बन्ध में जितने सिद्धान्त विद्यमान हैं, इनमें से कोई भी यथार्थता को प्रकट करता है। जितने सिद्धान्त हैं, वे हमें केवल सत्य के निकटतम ले जाते हैं। (No astronomer believes that any current cosmology adequately describes the Universe. The theories are only approximations.)

इसी प्रकार एम आई टी (अमरीका) के डा० फिलिप मोरीसन कहते हैं—ज्योतिषियों ने जो अब तक परीक्षण किये हैं उनके आधार पर यह निर्णय नही किया जा सकता कि खगोल उत्पत्ति के भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों में से कौनसा सिद्धान्त सही है। इस समय इनमें से कोई सा भी सिद्धान्त

सम्पूर्ण रूप से वस्तु स्थिति का वर्णन नहीं करता।

("Astronomers know far two little to make a choice among theories of the Universe and that no theory is adequate at the moment")

इस प्रसंग में संसार के महान वैज्ञानिक प्रो० आइन्सटाइन का सिद्धान्त हम पृष्ठ २६ पर दे चुके हैं, जिसके अनुसार यह संसार अनादि अनन्त सिद्ध होता है।

पूरे लेख का निष्कर्ष इस प्रकार है—महान आकस्मिक विस्फोट सिद्धान्त के अनुसार इस ब्रह्माण्ड का प्रारम्भ एक ऐसे विस्फोट के रूप में हुआ, जैसा आतिशबाजी के अनार में होता है। अनार का विस्फोट तो केवल एक ही दिशा में होता है। यह विस्फोट चारों दिशाओं में हुआ और जिस प्रकार विस्फोट के पदार्थ पुन उसी बिन्दु की ओर गिर पड़ते हैं, इस विस्फोट में भी ऐसा ही होगा। सारा ब्रह्माण्ड पुन अण्डे के रूप में संकुचित हो जायगा। पुन. विस्फोट होगा और इस प्रकार की पुनरावृत्ति होती रहेगी। इस सिद्धान्त के अनुसार भी ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति शून्य में से नहीं हुई। पदार्थ का रूप चाहे जो रहा हो, इसका अस्तित्व अनादि अनन्त है।

दूसरा सिद्धान्त सतत् उत्पत्ति का है। इसकी तो यह मान्यता है ही कि ब्रह्माण्ड रूपी चमन अनादिकाल से ऐसा ही चला आ रहा है और चलता रहेगा। इस सिद्धान्त को आइन्सटाइन का आशीर्वाद भी प्राप्त है। अतैव जगत् उत्पत्ति के सम्बन्ध में जैनियों का सिद्धान्त सोलहों आने पूरा उतरता है।

आचार्य हरिभद्र सूरि के शब्दों में—

पक्षपातो न मे वीरे, न द्वेष कपिलादिषु ।

युक्तिमद् वचन यस्य, तस्य कार्यः परिग्रहः ॥